श्री रोहिणीव्रत कथा

और

रोहिणीव्रतोद्यापनम्

रचयिता—

पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य 'वसन्त'-सागर।

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक-सूरत।

प्रथमबार] वीर सं० २४७१ [१०००

मूल्य—बारह आने।

स्व० सेठ किसनदास पूनमचंद कापडिया

स्मारक ग्रंथमाला—सूरत नं० ७



हमने अपने पूज्य पिताजीके स्मरणार्थ वीर सं० २४७६ में २०००) अलग निकाल कर उनके नामसे एक स्थायी ग्रंथमाला प्रकट करनेको निकाले थे जिसमें अबतक ६ ग्रंथ प्रकट होकर 'दिगम्बर जैन' पत्रके ग्राहकोंको भेंट दिये जा चुके हैं जिनके नाम हैं—

१—पतितोद्धारक जैनधर्म (कामताप्रसाद जैन) १॥)
२—संक्षिप्त जैन इतिहास तृ० भाग, द्वि० खंड १॥)
३—पंचस्तोत्र संग्रह सार्थ (बसंत) ॥=)
४—भगवान कुंदकुंदाचार्य (कामताप्रसाद) ॥)
५—संक्षिप्त जैन इतिहास तृ० भाग चतुर्थ खंड १॥)
६—जैनाचार्य (३३ आचार्योंके चरित्र) १॥=)

और यह सातवां ग्रंथ रोहिणीव्रत कथा व उद्यापन जिसकी रचना श्री प० पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य बसंत (सागर)ने की है, यह प्रकट किया जाता है और "दिगम्बर जैन" के ४४वें वर्षके ग्राहकोंको भेंटमें दिया जाता है।

यदि ऐसी ही अनेक स्मारक ग्रंथमालायें दि० जैन समाजमें स्थापित होकर उनके द्वारा बिनामूल्य या अल्प मूल्यमें नवीन ग्रंथ प्रकट होते रहें तो अप्रकट दिगम्बर जैन साहित्यका अनिवार्य प्रचार हो सकेगा।

सूरत वीर सं० २४७७
ता० १-५-५१

मूलचन्द किसनदास कापडिया
प्रकाशक।

शुद्धिपत्रम्-रोहिणी व्रतोद्यापनम् ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	विघातस्या	निघातस्या
२	४	धींद्रस्थायिन	धींद्रस्थायिन
२	२०	शिखरो	शिखरी
३	१०	द्यापु	द्यायु
४	११	तत्त्व	तत्व
६	२	कान्ते	कान्तम्
६	८	स्ध्ट	रुद्ध
६	२१	श्रीमत	श्रीमन्
९	८	कलात्मश्न	फलात्मरत्न
,,	१७	पूर्णाघण	पूर्णार्घेण
१०	५	दीप	दीप
,,	११	पक्षे	सपक्षे
,,	१२	नरवदना	नरवन्दना
,,	१७	दीत्रापति	दिवापति
११	१	पतभवनं	पतिभवन
,,	२	मनले	ममल
,,	१२	सपाता	सयाता
,,	१६	निविन्न	विविध
१२	१५	य	म
१४	८	पिहत	निहत
,,	,,	पीडत	पीडनं
,,	,,	पीडन	मीडन
१२	२२	सयत्न	सपत्न
१५	१०	दैवस	दुर्जय

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१२	राह्नत	राज्ते
,,	१७	नहि	नहि
१८	१	निकृत	निकृत्त
,,	७	तत्नीर्ति	सत्नीर्ति
,,	२२	मुदाह	मुदाहं
१९	६	जिनं यज	निनं तं यज
,,	१७-१८	भज	यज
२०	७	प्रदीपे	प्रदीप्ते
२१	१८	ममनाय	समनाप
२२	१२	नश्यती	नश्यता
२४	३	क्यो	कथा
,,	८	धन्याभाग्या	धन्यभाग्यो
२५	२	लोलित	लकित
,,	७	पदो	यादा
२७	१	पलाँग	पलाँथ
२८	८	मन्निधो	सन्निधो
२९	१९	विप्र	निप्लए
३०	४	चन्द्रे	चक्रे
,,	१०	रम्पै	रम्यै
३२	१८	रक	रफ
३४	९	पद्मन्द्रिक	पद्मचन्द्रिक
३६	१८	मामिनीं	मानिनीं





श्रीरोहिणीव्रत कथा।

श्रीहरिषेणाचार्यकृत संस्कृत कथाका हिंदी अनुवाद



वृषभादि सुवीरान्तान् जिनान्नत्वा प्रभक्तितः।
रोहिणीव्रतव्याख्यानं वक्ष्ये भव्याः यथागमम्॥

मगधदेशमें राजगृह नामका विशाल नगर है। इसमें सम्यग्दर्शनसे शोभायमान राजा श्रेणिक राज्य करते थे। इनकी अतिशय प्रसिद्ध चेलना नामकी महादेवी थी। इनके वारिषेण नामका पुत्र था जो श्रावक था और सिद्धांतमें अतिशय प्रसिद्ध था। एकदिन राजा श्रेणिक विपुलाचल पर्वतपर स्थित बारह सभा सहित युक्त श्री वर्धमानस्वामीके समीप पहुंचे और देव, असुर तथा मनुष्योंके द्वारा स्तुत और समस्त कर्मोंका क्षय करनेवाले श्री वर्धमानस्वामीको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनसे यह पूछने लगे कि हे स्वामिन्! आपके समान तीर्थंकर कितने हैं, तथा चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण कितने हैं? ऐसा ही अन्यत्र भी है कि हे नाथ! आपके समान जिनेन्द्र कितने हैं? चक्रवर्ती कितने हैं? बलभद्र और नारायण कितने हैं? तथा इनके शत्रुभूत प्रतिनारायण कितने हैं? हे स्वामिन्! यह सब मुझसे कहिये। हे जिनेन्द्र! हे पवित्र! हे त्रिभुवनगुरु! मैं इस समय आपके प्रसादसे सब जानना चाहता हूं।

मगधदेश-राजा श्रेणिकके वचन सुनकर श्री वर्धमान जिनेन्द्र कौतुक युक्त चित्तवाले राजाके समक्ष उनके प्रश्नानुसार कहने लगे-हे राजन्! समस्त पृथिवीके अधिपति तीर्थंकर चौबीस कहे गये हैं तथा चक्रवर्ती उनसे आधे अर्थात् बारह, बलभद्र नौ नारायण नौ, और दुष्ट कार्योंसे युक्त प्रतिनारायण भी नौ कहे गये हैं। इस प्रकार श्री ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके पुराणोंका कथन करते हुए श्री वर्धमान जिनेन्द्र अङ्गदेशमें पधारे। वहाँ उन्होंने कहा—

इस अङ्गदेशमें चम्पापुरी नामकी मनोहर नगरी है, जो हमेशा मनुष्योंसे व्याप्त रहता है। पहले किसी समय इसके राजाका नाम वसुपूज्य था और रानीका जया। इन दोनोंके भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाला, रूपवान और बत्तीस लक्षणोंसे सहित वासुपूज्य नामका पुत्र हुआ था। बारहवें तीर्थंकर स्वामी उन श्री वासुपूज्यस्वामीका गुणरूपी रत्नोंके समूहसे भरा हुआ यह पुराण सुनकर राजाने अमृतचन्द्र नामके प्रथम गणधरसे यह पुराण पूछा। कौतुकसे व्याप्त है चित्त जिसका ऐसे राजा श्रेणिकके वचन सुनकर श्री वर्धमानस्वामी, सामने बैठे हुए श्रेणिकसे इस प्रकार कहने लगे—

जम्बूद्वीपमें स्थित इसी भरत क्षेत्रमें धन और धान्यसे सहित एक कुरुजाङ्गल नामका देश है, उसमें नागरिक लोगोंसे भरा हुआ अतिशय श्रेष्ठ हस्तिनागपुर नामका नगर है। वीतशोक वहाँका राजा था जो मनुष्योंका अत्यन्त प्यारा था। इस राजाके विद्युत्प्रभा नामकी प्रिय महारानी थी और अशोक नामका पुत्र था जिसका शरीर सदा शोकसे शून्य रहता था।

शोभा सम्पन्न अङ्ग नामके महादेशमें एक चम्पा नामकी श्रेष्ठ नगरी थी। वहाँ मघवा नामका राजा राज्य करता था और उसकी श्रीमती नामकी रानी थी। उसके आठ पुत्र थे जो गुणोंकी

रहते थे, समस्त पृथिवीतलमें प्रसिद्ध थे, तथा निम्नलिखित नामोंको धारण करते थे। लक्ष्मीका प्रिय १ श्रीपाल, गुणप्रिय २ गुणपाल, विस्तृत धनका धारक ३ वसुपाल, प्रजाका स्वामी ४ प्रजापाल, व्रतोंका धारण करनेवाला ५ व्रतपाल, लक्ष्मीका धारक ६ श्रीधर, गुणोंसे पृथिवीतलको अनुरक्त करनेवाला ७ गुणधर और यशका धारक तथा यशसे आकाशको सफेद करनेवाला ८ यशोधर। यथार्थ नामका धारण करनेवाले ये सभी पृथिवीतलमें अतिशय शोभायमान होते थे।

इसी मघवा राजाकी रूप यौवन सम्पन्न, स्थूल उठे हुए तथा सघन स्तनोंसे युक्त रूप कलाकी आधार रोहिणी नामकी प्रसिद्ध कन्या थी। एकबार रोहिणी कार्तिक मासकी अष्टाह्निकामें उपवास धारण कर चंदन नैवेद्य पुष्प धूप तन्दुल आदि पूजाकी सामग्री लेकर चम्पानगरीकी पूर्व दिशामें स्थित महापूताङ्ग नामक अतिशय उच्च जिनालयमें पहुंची। वहां भक्तिपूर्वक पुष्प गन्ध अक्षत आदिसे जिन भगवानकी बड़ी भारी पूजा कर उसने श्री जिनेन्द्रदेव और साधुओंको नमस्कार किया, फिर शेषाक्षत लेकर जिन मन्दिरसे बाहर आई, और सभाके मध्यमें स्थित माता पिताके लिये तथा अन्तःपुरके अन्यजनोंके लिये भी उसने वह शेषाक्षत दिये।

पिताने कन्याको लेकर अपनी गोदमें बैठाया और उसे यौवन रूप हस्तीको प्राप्त अर्थात् नूतन तारुण्यवती एवं प्रौढ़ वय कर कुछ विषाद युक्त हो इस प्रकार चिन्ता की कि अत्यन्त रूपसे सम्पन्न एवं नवयौवन वाली यह कन्या गुण और रूपसे समानता रखनेवाले किस युवाको दूंगा।

ऐसा विचार कर राजा जब कुछ निश्चय न कर सके तब राजाने कन्याको तो घरके प्रति विदा किया और आप स्वयं शीघ्र ही विचार मन्त्रशालामें प्रविष्ट हुए। वहां उसने बुद्धिमान सुमति १, श्रेष्ठ तथा शास्त्र द्वारा सहित श्रुतसागर २, बुद्धिके स्वामी

विमलमति ३, और निर्मल अभिप्रायके धारक विमल ४, इन मन्त्र करनेमें अत्यन्त निपुण चारों मन्त्रियोंको बुलाया और जब वे यथायोग्य आसनपर बैठ चुके तब राजाने उनसे यह पूछा—

हे मन्त्र करनेमें चतुर मन्त्रियो ! आप लोग निःशङ्क होकर कहिये कि यह सुकुमाराङ्गी रोहिणी कुमारी किस कुमारके लिये दी जाय ?

इस प्रकार राजाके वचन सुनकर अन्य मन्त्रियोंके द्वारा प्रेरित हुआ सुमति मन्त्री सबसे पहले राजाको इष्ट लगनेवाले वचन बोला—हे राजन ! यदि यह कन्या किसी एक कुमारके लिये दी जाता है तो सम्भव है कि इसका प्रेम सम्बन्ध उस पुरुषसे हो तथा न भी हो अथवा दैवयोगसे उस सुभागी पुरुषकी इस कुमारीसे प्रीति न हुई तो मातापिता क्या करेंगे ? इसलिये यह कन्या स्वयंवरमें अनेक राजाओंका समागम रहते अपने इष्ट पतिको ग्रहण करे ऐसा मेरा विचार है। स्वयंवरकी पद्धति पूर्व राजाओंने आनन्दपूर्वक स्वीकृत की है, इसलिये जो बात पहलेसे चली आई है उसके करनेमें पुरुषोंको लज्जा नहीं होती।

सुमति मन्त्रीकी बात सुनकर राजाने शीघ्र ही नाना मणियोंसे सुशोभित सुवर्ण निर्मित अतिशय ऊंचे करोड़ो सिंहासन बनवाये और शीघ्र गमन करनेवाले अपने पुरुषों द्वारा इस समस्त पृथिवी-तल पर उसी समय स्वयंवरकी घोषणा करा दी। वैभवशाली राजा दूतों द्वारा स्वयंवरका समाचार सुनकर शोभायुक्त [illegible] आये और मञ्चोंपर आरूढ़ होगये। उस [illegible]
तालसे बजनेवाले [illegible] पृथिवी और [illegible]
करनेवाले पुरुषों [illegible]
प्रसन्न है चित्त [illegible]
हाथसे छू रहा था, [illegible]
[illegible] आलिम कन्याने [illegible]

अपने हाथसे स्निग्ध बालोंके समूहको शिरपर निश्चल कर रहा था, कोई मृणाल समान कान्तिवाले ओठको हाथसे कुछ खींचकर एक आँखसे देख रहा था और दूसरी आँखसे दिशाकी मुखकी ओर देख रहा था, कोई, जिसने अपनी सुगन्धसे भ्रमरोंको आसक्त कर रक्खा है, जिसने समस्त दिशाओंको सुगन्धित कर दिया है और जिसका अग्र भाग खिल रहा है ऐसा क्रीड़ा कमल अपने हाथमें कर रहा था, कोई वीणा लेकर मान स्वरोंसे युक्त तथा ललाम मूर्च्छनाओंसे सहित सुन्दर गीत गा रहा था, कोई कुछ लिखी हुई सुन्दर पट्टीसे सान्द्र भरे चमकती हुई छुरीको नितम्ब स्थल पर बांध रहा था, और कोई प्रसन्नचित्त राजा हाथसे पान लेकर अपने शब्दसे पृथिवी और आकाशको भरता हुआ सहसा हँस रहा था। इस प्रकार उस समय जिनके चित्त कामसे व्याकुल हो रहे हैं और जो कन्याके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ऐसे सभी राजा विविध प्रकारकी क्रियाएं कर रहे थे।

इधर राजाओंकी ऐसी चेष्टाएं हो रही थीं, उधर महामूल्य वस्त्रोंको धारण करनेवाली, सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित, सौन्दर्यसे जिसका प्रत्येक अङ्ग सुशोभित हो रहा है, मदोन्मत्त हाथीके समान जिसकी चाल है, पाँच वर्णके फूलोंसे बनी माला जिसके हाथमें है और जो धायके आगे चल रही है ऐसी रोहिणी कन्याने स्वयं-वर मण्डपमें प्रवेश किया।

जिसके चित्त कामसे व्याकुल हो रहे हैं ऐसे सभी राजा उस कन्याको स्वयंवर मण्डपमें आई हुई देखकर निम्न प्रकार बारबार चिन्तवन करने लगे कि यह क्या यक्षी है कि किन्नरी है कि विद्याधरकी पुत्री है, कि उर्वशी है, कि इन्द्राणी है, कि रति है, कि तिलोत्तमा है? इस तरह बहुत प्रकारके वितर्क करते हुए राजा विस्मित चित्त होकर बैठे हुए थे। उस समय उन सभीके नेत्र रोहिणीके मुख कमल पर लग रहे थे।

अनन्तर कोकिलके समान मधुर स्वरवाली तथा सोनेकी छडी हाथमें धारण करनेवाली सुमङ्गला नामकी मानवती धायी कन्यासे बोली-हे कुमारी! महाबुद्धपुरके स्वामी, कुन्दके पुष्पके समान दांतोंवाले कुन्द नामके इस सुन्दर राजकुमारको वर! यह मत्स्यपुरका स्वामी है, सुवर्णके समान इसका शरीर है, हेम इसका नाम है, बहुत भारी सुवर्ण तथा धनका आधार है। हे मनस्विनि! तू इसे सम्मानित कर। जिसका समस्त शरीर रत्नोंसे प्रकाशमान हो रहा है ऐसा यह रत्नसंचय नामका रत्नपुरका स्वामी है। हे बाले! तू अपना मन इसमें कर।

यह तिलक नामके नगरका स्वामी है, तिलक इसका नाम है, राजाओंके मध्यमें तिलकके समान है। हे प्रिये! तू इसमें प्रीति कर। यह विद्युत्पुरका स्वामी है विद्युत्प्रभ इसका नाम है। हे मानिनि! तू इस भोगीके साथ भोगोंको सम्मानित कर। इस प्रकार सुमङ्गला धायीके द्वारा जिनकी सम्पदाएँ दिखलाई गई हैं ऐसे बहुतसे राजाओंको उल्लंघन कर उन सबपर द्वेष धारण करती हुई रोहिणी शीघ्र ही आगे बढ़ गई।

उसके हृदयका अभिप्राय जाननेमें निपुण पतिव्रता धायी समस्त राजाओंको छोड़कर आगे बढ़ी हुई रोहिणीसे प्रसन्न वचनों द्वारा इस प्रकार फिर बोली-हे स्वामिनि! यह गुणोंका आधार वीतशोक राजाका पुत्र है, अतिशय श्रेष्ठ है, रूपसे कामदेवको जीत रहा है, शोकसे रहित है और अशोक इसका नाम है, हे पुत्रि! देवके समान रूपको धारण करनेवाले अथवा विद्याधर तुल्य इस विलासीके साथ तू चिरकाल तक सुखका उपभोग कर। धायीके वचन सुनकर रोहिणीने उसके सामने स्थित, हृदयको प्रिय लगनेवाले तथा कामदेवके समान सुन्दर उस अशोककुमारको देखा। उस सुन्दर अशोकको देख कर कन्या क्षण मात्रमें मोहको प्राप्त हो गई, और फिर चेतना प्राप्त कर विस्मित चित्त होती हुई

विचार करने लगी कि यह मेरे आगे क्या शरीर सहित कामदेव सुशोभित हो रहा है? कि इन्द्र कि विद्याधरोंका राजा, कि भोग भूमिमें उत्पन्न हुआ कुमार। अपने चित्तको हरण करनेवाले उस पुरुषको मनरूपी मालामें अच्छी तरह बांध कर रोहिणीने पीछे उस अशोकके गलेमें माला छोडी।

उस समय वीतशोकके पुत्र अशोकको कन्याकी मालासे विभूषित देखकर अन्य सब राजा अपने घर चले गये। जिनके ज्ञानावरणादि कर्म क्षीण होचुके हैं, जिनके केवलज्ञान ही नेत्र है और जो समस्त पदार्थोंको जानते हैं उस श्री जिनेन्द्र देवकी अतिशय पवित्र महापूजा कर शुभ दिन तथा शुभ लग्नादिके समय मघवा राजाने द्वारा प्रसन्न रोहिणीका अशोकने बडे अनुरागसे विधिपूर्वक विवाहा।

रोहिणीके साथ चन्द्रमाके समान मनोऽभिलषित भोगोंको भोगता हुआ अशोक राजा वहां सुखसे रहने लगा। पिता वीतशोकने यद्यपि बहुतसे पत्र भेजे, तथापि रोहिणीके स्नेहसे अशोक पिताके पास नहीं जाता था। एकबार अशोकके पिताने अत्यन्त उत्सुक होकर किसी स्तुतिपाठक (चारण) के हाथ परिचायक चिह्नके साथ शीघ्र ही पत्र भेजा। उस स्तुति पाठकने चम्पापुरी जाकर वीतशोक महाराजकी स्तुति कर उनका पत्र अशोककुमारके आगे रख दिया। अपने हाथमें पत्र लेकर और उसका अर्थ बांचकर पिताके दर्शनके लिये उत्कण्ठित अशोक शोकसे युक्त हो गया।

तदनन्तर अशोक श्वसुरसे पूछकर रोहिणीके साथ ले अपनी सेना सहित क्रमसे पिताके समीप चला। वहां पहुंच कर अशोकने सभामें स्थित पिताको तथा माताको नमस्कार किया और इस प्रकार पिताके समागमसे अशोक पुनः शोकसे रहित हो गया।

अथानन्तर एक दिन वीतशोक महाराजने ज्वालाओंसे आका शको प्रकाशित करनेवाली उल्का देखी। उल्कापात देखकर जिनके

हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ है उस महाराज वीतशोक दिगंबर अञ्जलि बांधे हुए सभासदोंसे इस प्रकार कहने लगे—

हे सभासदो! प्राणियोंका जीवन बिजलीके समान चञ्चल है, मधुर भोजनसे पालित शरीर क्षणभरमें नष्ट हो जाता है, ये मकान आदिक सब मेघ पटलके समान आकारके हैं, प्रिय स्त्रीजनोंके साथ प्रीति संध्याकालकी लालीके समान है, बन्धुओंके साथ जो प्रेम है वह स्वप्न राज्यके समान है, इस संसारमें वह वस्तु है ही नहीं जो स्थिरताको प्राप्त हो।

उन सभासदोंसे ऐसा कहकर तथा इष्ट था [illegible] और अशोकको दिये राज्य लक्ष्मी देकर वीतशोक महाराज घरसे निकल पड़े। उस समय गुणधर नामक मुनि [illegible] में विराजमान थे, वीतशोक महाराजने बड़ी भक्तिके साथ पास जाकर [illegible] उन मुनिराजको नमस्कार किया और बहुतसे अन्य मनुष्योंके साथ उनके पास दीक्षा ग्रहण की। मुनिराज वीतशोक अत्यन्त कठिन तप कर तथा कर्मोंका नाशकर शीघ्र ही निर्वाण धामको प्राप्त हुए।

पिताकी दीक्षासे उत्पन्न हुए महाशोकको नष्ट कर राजा अशोकने अपने राज्यका विस्तार किया, तथा समस्त राजाओंको नम्रीभूत किया। राजा अशोकके साथ मनोहर भोग भोगती हुई रोहिणीके क्रमसे आठ निर्मल पुत्र उत्पन्न हुए। इसी प्रकार दीप्तिसे सम्पन्न कमलदलके समान नेत्रोंवाली चार पुत्रियां भी क्रमसे उत्पन्न हुईं। पुत्र और पुत्रियोंके नाम इस प्रकार हैं—विगतशोक १, गतशोक २, जितशोक ३, जिनशोक ४, धनपाल ५, वसुपाल ६ और गुणकी खान गुणपाल ७।

इस प्रकार विद्वानोंके द्वारा रोहिणीके सात पुत्रोंके नाम जानने योग्य हैं—यशोधरा, सुरकान्ता, लक्ष्मीमती और सुप्रभा ये चार

पुत्रियां थीं। रोहिणीके इन समस्त पुत्र पुत्रियोंके बाद एक लोकपाल-कुमार नामका आठवां पुत्र हुआ जो रूपसे सुशोभित था।

किसी एक समय अशोक राजा, बुद्धिमती रोहिणी, और लोकपाल नामके छोटे पुत्रको गोदमें लिये हुए वसन्ततिलका नामकी धाय ये तीनों महलके अग्रभाग पर मनोहर कौतुक करते तथा गोष्ठीसुखका उपभोग करते हुए सुखसे बैठे हुए थे। उसी समय मार्गसे कुछ ऐसी स्त्रियां निकलीं जो शोकसे युक्त थीं जिनके परिवार समूह मरे हुए थे जो कोलाहल कर रही थीं, मस्तक नवाकर खड़ी हुई थीं, रुदन कर रही थीं, अपने स्वामीको वारंवार पुकारती थीं, वक्षस्थल, शिर, स्तन और भुजाओंको कूटती हुई रुदन कर रही थीं।

महल पर बैठी हुई रानी रोहिणीने जब इन स्त्रियोंको देखा तब कौतुक-वश वसन्ततिलका नामकी धात्रीसे इस प्रकार पूछा—हे अम्ब! नृत्य विशारद जानकार विद्वान भिन्नक, शाली ठक राग और कुरंगिनी इन पांच नाटकोंके लक्षण कहे हैं परन्तु भरताचार्य द्वारा कहे हुए इन नाटकोंको छोड़ कर इन स्त्रियों द्वारा यह कौनसा नाटक किया जा रहा है, जो शिर आदिके कूटनेसे सहित है। विशेष, अधम जातिमें स्वागत गीत इसकी भाषा और स्वरोंके चढ़ाव उतारसे रहित यह नाटक मुझसे कहिये। मुझे इस समय इस विषयका कौतूहल हो रहा है।

आश्चर्यसे भरे हुए रोहिणीके वचन सुन कर वसन्ततिलका धाय इस प्रकार बोली—हे पुत्रि! इन दुःखी स्त्रियों द्वारा यह नाटक नहीं किन्तु रुदन किया जा रहा है। यह सुन रोहिणी कौतुक वश उससे फिर बोली—हे माता! शोक अथवा दुःख क्या कहलाता है? मुझसे कह। अबकी बार धाय क्रुद्ध होकर तथा क्रोधसे लाल लाल आँखें करती हुई बोली—हे सुन्दरि! क्या तुझे उन्माद हो गया है, या तेरा ऐसा पाण्डित्यका वैभव है? या रूपसे उत्पन्न हुआ घमण्ड है या लोकोत्तर सौभाग्य है जिससे तू

इसमें रुदन और आलापसे मिलित नाच करती हैं? तू शोक और दुःखको नहीं जानती? जान पड़ता है कि तू आज ही उत्पन्न हुई है।

वसन्ततिलकाके वचन सुनकर रोहिणीने उससे फिर कहा-हे भद्रे! मुझ पर क्रोध मत कर। संगीत, गणित, चित्र, अक्षर, नृत्य, चौसठ प्रकारके विज्ञान और बहत्तर प्रकारकी कलाएं इन सबको मैं जानती हूं परन्तु मनी चड़ा, रुदन, शोक आज तक मुझसे सीखा नहीं गया। यह गुण पाठ मैंने कभी न देखा है न सुना है। इसलिये आपसे पूछती हूं।

रोहिणीके वचन सुनकर धायने उससे फिर कहा-हे पुत्रि! यह न नाटकका प्रयोग है और न संगीतमयी भाषाका रूप है। किन्तु इष्टजनोंकी मृत्युके कारण दुःखसे रोनेवाले जीवोंका शब्द है। हे वत्स! मैं फिर कहती हूं कि यह शोक कहलाता है। धायके वचन सुनकर रोहिणीने उससे फिर कहा-हे भद्रे! मैं रोनेका अर्थ नहीं जानती अतः बतलाओ कि यह कैसा होता है?

रोहिणी और धायमें यह वार्तालाप हो रहा था कि बीचमें ही अशोक राजा रोहिणीसे बोले मैं शोकके द्वारा तुझे रोनेका अर्थ अच्छी तरहसे सिखलाता हूं। यह कहकर राजाने अपने हाथमें लेकर बालक लोकपालको रोहिणीके देखते देखते शीघ्र ही महलकी छतपरसे नीचे छोड़ दिया। बालक लोकपाल, अशोक वृक्षकी चोटी पर अशोक वृक्षके फूलोंसे भरी हुई शय्या पर पड़ा।

उस बालकको वहां पड़ा जानकर नगरके सभी लोग कोलाहल करते हुए उस स्थान पर आ पहुंचे और कहने लगे कि रोहिणीको ऐसा शोकका कारण क्या उत्पन्न हुआ? यह प्राप्त हुए शोक और दुःखको देख ही नहीं पाई थी कि उसके पहले ही नगरके देवताओंने अशोक वृक्षके अग्रभाग पर स्थित पाये

प्रकारके रत्नोंसे उज्ज्वल दिव्य सिंहासन रच दिया। उस सिंहासन पर बैठे हुए बालकका देवताओंने रत्न और सुवर्णके बने, क्षीर-सागरके जलसे भरे और कमल पुष्पोंसे आच्छन्न सुवर्णके एकसौ आठ कलशोंके द्वारा अभिषेक किया, तथा उसे बालोचित आभूषणोंसे विभूषित किया। इस प्रकार बालक क्रीडा करता हुआ उस अशोक वृक्षके शिखर पर विद्यमान था।

जब राजा अशोकने नीचसे आकर झांका तो क्या देखते हैं कि रोहिणीका बालक अशोक वृक्षकी चोटी पर सिंहासनमें विराजमान है, अपनी गन्धसे दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले पुष्प तथा धूप आदिसे उसकी पूजा हो रही है, देवता अपने हाथमें स्थित कलशोंसे उसका अभिषेक कर रहे हैं, और दिव्य आभरणोंसे विभूषित किया गया है। यह देखकर सभा प्रसन्न रहनेवाले महत्वाक्ष, महाबुद्धिमान प्रवीण मन्त्री, महाराज अशोक, प्रेम करनेवाली रोहिणी तथा पुरोहित आदि सभी लोग पुत्रसहित रोहिणीके द्वारा किये हुए उपवास और उसके फलसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए।

तदनन्तर आश्चर्यसे भरे हुए वे मन्त्री लोग देवोपनीत सब आभरणोंसे सुभूषित उस बालकके पास आनन्दसे स्थित हुए। नागरंगार, चम्पक, अशोक, नमरु और मौलिश्रीके वृक्षोंसे व्याप्त तथा आम एवं बिजौरा आदिके वृक्षोंसे सम्पन्न एक अशोक वनमें अनिभूति, महाभूति, विभूति और अम्बर तिलक नामके चार जिनमन्दिर थे। उसी समय रूप्यकुम्भ और सुवर्णकुम्भ नामके दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज विहार करते हुए हस्तिनापुरनगरमें पधारे, और पूर्वदिशामें समुत्पन्न महाभ्यन्तर महाभूतितिलक नामके जिनमन्दिरमें विराजमान हुए। तदनन्तर वे घेड़े वनके पास आकर राजा अशोकके लिये मुनिराजका सब वृत्तान्त कहा। वनपालके वचन सुनकर भक्तिसे राजाके शरीरमें रोमांच उठ आये। वे बड़े वैभवके साथ मुनिराजके समीप पहुंचे। पहुंचनेके बाद राजा अशोकने दोनों मुनिराजोंकी

वन्दना की, और फिर अवधिज्ञानी रूप्यकुम्भ नामक मुनिराजसे विधिपूर्वक पूछा-हे प्रभो! बतलाइये कि मैंने और रोहिणीने पूर्वभवमें समस्त जीवोंकी दयामें तत्पर कौनसा पवित्र धर्म धारण किया था? इसके सिवाय हे स्वामिन्! त्रिशोक आदि आठ पुत्रों तथा चार कन्याओंके पवित्र पूर्वभवका सम्बन्ध भी मुझसे कहिये।

राजाके ऐसे वचन सुनकर मुनिराज रूप्यकुम्भ अवधि-ज्ञानरूपी नेत्रसे सब बात ज्ञात कर इस प्रकार कहने लगे- हे राजेन्द्र! मैं संक्षेपसे आपकी स्त्रीके अशोक (दुःखाभाव) का कारण कहता हूं उसे एकाग्र चित्तसे सुनो—

हस्तिनागपुरसे बारह योजन मार्ग चल कर एक नीलगिरी नामका पर्वत है जो अतिशय ऊंचा और अनेक वृक्ष तथा शिला-तलोंसे युक्त है। उस पर्वतकी शिखरपर एक यशोधर मुनिराज आतापन योगसे स्थिर रहते थे। वह मुनिराज समस्त शत्रुओंके दहनमें धीर थे, चारण ऋद्धिधारी थे, लोकमें शान्ति उत्पन्न करने वाले थे, सर्वौषधि ऋद्धिसे प्राप्त थे, उनका शरीर मलसे भूषित था, वे मासोपवाससे युक्त थे और उनका मन अत्यन्त स्थिर था। किसी एक समय मृगमारी नामसे प्रसिद्ध एक भयंकर शिकारी मृगोंको मारनेके लिये उन नीलगिरि नामक पर्वत पर गया।

मुनिराजके माहात्म्यसे वह शिकारी मृग मारनेके लिये असमर्थ हो गया, उसके सब बाण व्यर्थ हो गये। यह देख कर उसने विचार किया कि मैं कभी व्यर्थ नहीं जानेवाले अपने इन बाणोंसे सामने स्थित मृगोंको मारनेके लिये समर्थ नहीं हो पा रहा हूं इसमें क्या कारण है? कुछ समय बाद जब उसकी दृष्टि कुछ दूरीपर स्थित मुनिराज पर पड़ी तब उसने शीघ्र ही जान लिया कि इन मुनिके प्रभावसे ही मेरे बाण निष्फल हुए हैं।

वह मुनिराज पारणाके लिये जब जब नगरमें गये तब तब उस शिकारीने आकर मुनिराजके बैठनेकी शिलाको तृण तथा काष्ठसे

जलाकर उसे भस्म तथा अङ्गारोंके समूहसे खूब गरम कर दिया और स्वयं मृगोंको मारनेकी इच्छासे अन्यत्र जाकर स्थित हो गया। मुनिराज पारणा कर मन्द मन्द गतिसे चलते हुए इस शिकारी द्वारा अग्निसे तपाई हुई आतापन शिला पर पहुंचे। यद्यपि पासमें पड़े हुए अङ्गार आदिसे मुनिराजने जान लिया था कि यह शिला गरम की गई है, तथापि निर्मल बुद्धिके धारक मुनिराज सदाके लिये आहार पानीका त्याग कर अर्थात् सन्यास धारण कर उस शिलापर आरूढ हो गये और अन्तकृत्केवली होकर समस्त सुर असुरों द्वारा नमस्कृत होते हुए समस्त कर्मोंसे निर्मुक्त हो मुक्ति-लक्ष्मीको प्राप्त हुए।

उदुम्बर नामक कुष्ठसे जिसका समस्त शरीर सड गया है ऐसा वह शिकारी सातवें दिन मृत्युको प्राप्त हुआ और मरकर मुनि हत्याके पापसे सातवें नरक गया, वहां उसकी तैंतीस सागरकी आयु थी। उस शिकारीका जीव दुःखसे सातवें नरकसे निकल कर बहुत दिनतक तिर्यग्गतिको प्राप्त हुआ फिर मनुष्यगतिमें भ्रमण करता रहा।

इसी भरतके हस्तिनागपुर नगरमें बहुत भारी व्यापारमें निपुण गन्धहस्ती नामसे प्रसिद्ध एक व्यापारी रहता था। उसकी स्त्रीका नाम गान्धारी था। उस शिकारीका जीव उसके शरीर पूतिगन्ध नामका पुत्र हुआ। किसी दिन वह जवान होने पर मात्र गायोंकी रक्षा करनेके लिये नीलगिरि पर्वत पर गया। उस ऊंचे नीलगिरि पर्वत पर वह दावानलसे जल गया, उसका सारा शरीर भस्म हो गया जिससे बेचारा मृत्युको प्राप्त हुआ। थी रखवालीके लिये गोकुलसे आये हुए किसीने निकटवर्ती उसके माता पिताके लिये पुत्रका यह समाचार स्पष्ट कहा। दुर्गन्धित पुत्रका मरण सुनकर गान्धारी करुणास्वरसे रुदन करती रही—हे राजन्! यह मैंने मुनिको दुःख देनेवाले शिकारीका कारण तुमसे कहा। अब अशोक और रोहिणीका सम्बन्ध कहता हूं।

हे राजन् ! इसी हस्तिनागपुर नगरमें एक वसुपाल नामके राजा होगये हैं। उनकी भार्याका नाम वसुमती था। वसुमतीका भाई धनमित्र राजसेठ था जो बड़ा धनी था। उसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा था, उन दोनोंके दुर्गन्धा नामकी पुत्री थी। मरे हुए कोढ़ी कुत्तेके शरीरसे जैसी दुर्गन्ध आती है ऐसी ही उसके शरीरसे असहनीय तथा समस्त आकाशको व्याप्त करनेवाली दुर्गन्ध सदा निकलती रहती थी। दुर्गन्धसे भरे हुए उसके समीपवर्ती स्थानमें सूअरके समान मनुष्य भी खड़ा रहनेके लिये समर्थ नहीं होता था, फिर अन्य दुर्बल साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी ?

उसी नगरमें एक वसुमित्र नामका धनवान सेठ था। उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था। इन दोनोंके एक श्रीषेण नामका पुत्र था। उस श्रीषेणको जुआ खेलना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, परस्त्री सेवन करना, चोरी करना, जीवहिंसा करना और मांस भक्षण करना इन व्यसनोंमें आसक्ति थी। श्रीषेण अविनीत-अशिक्षित था इसलिये मनुष्योंको दुःख देनेवाले इन सातों व्यसनोंसे सदा क्रीड़ा किया करता था। सात व्यसनोंके विषयमें अन्यत्र भी कहा है कि जुआ, मांस, वेश्या, परस्त्री, हिंसा, चोरी, और मदिरा ये, मनुष्योंके सात दोष हैं जो अत्यन्त पापसे पूर्ण हैं और शिष्ट मनुष्य इन्हें दुर्गतिका मार्ग कहते हैं।

एक दिन यह श्रीषेण चोरीके लिये किसी धनवानके घरमें घुसा और अकस्मात् भाग्य युक्त यमदण्ड नामके कोतवालके द्वारा पकड़ा गया। यमदण्डने इस दुष्ट चोरको अच्छी तरह बांध कर नगरसे बाहर भेज दिया। जाते समय उसके आगे नगाड़ेका शब्द होता था। बहुत लोगोंसे घिरे एवं दृढ़बन्धनसे बंधे हुए उस श्रीषेणको नगरके बाहर ले जाया जाता देख धनमित्र सेठने कहा—हे श्रीषेण ! यदि तू मेरी कन्याके साथ विवाह करना स्वीकार करे तो मैं निःसन्देह तुझे छुड़ा दूं। भयसे कांपते हुए श्रीषेणने

उसके वचन सुन कर कहा—हे मातुल! मैं क्षमा ही करूंगा और मुझे शीघ्र ही बन्धनसे छुड़ा दें।

मित्र धनमित्रने राजासे कह कर श्रीषेणको शीघ्र ही बन्धनसे छुड़ा लिया और उसके लिये अपनी पूतिगन्धा नामकी पुत्री विधिपूर्वक प्रदान कर दी। जिसका गन्धमात्र सूंघ लोग भाग जाते थे उस पूतिगन्धाको इसने विधिपूर्वक विवाहा और सुरत तथा नाकको ढक कर जिस किसी तरह एक रात्रिभर उसके साथ रहा, परन्तु दुर्गन्धका दुःख सहन नहीं कर सका इसीलिये सवेरा होते ही नगरसे कहीं अन्यत्र चला गया। श्रीषेणके द्वारा छोड़ी हुई पूतिगन्धा अत्यन्त दुःखी हुई और अपने आपकी निन्दा करती हुई पिताके घर रहने लगी।

इस प्रकार पूतिगन्धाका काल बड़े दुःखसे व्यतीत हो रहा था कि किसी समय सुव्रता नामकी आर्यिका भिक्षाके लिये उसके पिताके घर आई। अनन्तर दुःखी पूतिगन्धा आर्यिकाको देखकर तथा उन्हें भिक्षा देकर परम उपशम भावको प्राप्त हुई।

उसी नगरमें एक कान्तिधर राजा था जिसकी रानीका नाम कामिनी थी। राजा कान्तिधरने समस्त शत्रुओंको जीत लिया था। एक दिन राजा कान्तिधर सभाके मध्यमें विराजमान था कि वनपालने आकर खबर दी कि हे राजन्! हमारे वनमें अमितास्त्र नामक मुनिराजके साथ भगवान् पिहितास्रव पधारे हैं जो चारण ऋद्धिके धारक हैं और शिलातल पर विराजमान हैं। वनपालके वचन सुनकर कान्तिधर राजा अपने परिवारके साथ उन दोनों मुनियोंको नमस्कार करनेके लिये गये। दोनों मुनियोंकी भक्तिपूर्वक वन्दना कर तथा श्रेष्ठ धर्म सुनकर राजा शीघ्र ही सम्यग्दर्शनसे सुशोभित हो गया।

उस समय पूतिगन्धा भी अपने परिवारके लोगोंके साथ वहाँ पहुँची थी। उसने दोनों मुनियोंको नमस्कार कर धर्मका व्याख्यान

हुआ जिससे उसके भाव अत्यन्त विशुद्ध हुए। अन्तमें पूतिगन्धाने दोनों हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर दयालु मुनि युगलसे अपने पूर्वभव पूछे।

महावैराग्यके कारणभूत पूतिगन्धाके वचन सुनकर योगिराज अमितास्रव सामने खड़ी हुई पूतिगन्धासे कहने लगे कि पुत्रि! तू स्थिर चित्तसे सुन। हे पुत्रि! मैं तेरे भवसे तेरी दुर्गन्धका कारण कहता हूं।

जम्बूद्वीपके इसी भरतक्षेत्रमें पश्चिम समुद्रके समीप एक सौराष्ट्र नामका उत्तम देश है। उसमें ऊर्जयन्तगिरिकी पश्चिम दिशामें एक गिरिनगर नामका नगर है। उसमें भूपाल नामक सम्यग्दृष्टि राजा था उसकी रानीका नाम स्वरूपा था। स्वरूपाका शरीर रूपसे शोभायमान था। इस भूपाल राजाका गङ्गदत्त नामक एक राजसेठ था। उसकी भार्याका नाम सिन्धुमती था जो मिथ्यात्व रूपी पिशाचसे दूषित थी। यह सिन्धुमती अपने रूप तथा यौवनके गर्वसे एक सुन्दर [illegible] सुन्दर की जननी [illegible] भी तुच्छ समझती थी। किसी एक समय मासोपवासी समाधिगुप्त नामक सम्यग्ज्ञानी मुनिराज पारणाके दिन इस नगरमें आये। उस समय गङ्गदत्त सेठ राजाके साथ क्रीड़ा [illegible] जा रहा था। उस सेठने देखा कि ये मुनिराज एक मासके उपवासे जाते हुए धीरे धीरे हमारे ही नगरमें प्रवेश कर रहे हैं। तब उसने अपनी प्रिया सिन्धुमतीसे कहा कि भद्रे! [illegible] निष्पाप मुनिराज अपने घर प्रविष्ट [illegible] इच्छित है सुन्दरि! तुम इन्हें आहार कराकर पीछे आजाना। सिन्धुमती [illegible] लौट तो गई परन्तु बहुत रुष्ट हुई। वह पतिकी आज्ञासे मुनिराजको अपने घर ले गई। वहां उसने [illegible] साधुके [illegible] लिये [illegible] हुई कड़ुवी तूमड़ी खड़े हुए उन मासोपवासी मुनिराजको आहारमें दे दी।

मुनिराज समाप्त किये आहार पानीका त्याग कर तथा आराधनाकी आराधना कर स्वर्गमें देव हुए। जिस समय मृत मुनिको विमानमें अधिष्ठित कर लोग नगरके बाहर लिये जा रहे थे उसी समय राजा प्रमद वनसे लौट रहा था। उसने किसी मनुष्यसे पूछा कि क्या बात है? राजाके वचन सुन कर उस मनुष्यने उत्तर दिया कि यह कडुवी तुमडी देनेवाली सिन्धुमतीकी चेष्टा है। राजाने यह सुन कर उस दुराचारिणी सिन्धुमतीका सिर मुडवाया, पांच वस्त्र उसके कण्ठमें बांध, ताडनके साथ उसे गधेपर बैठाया और अनेक मनुष्योंके समक्ष उसे उसी समय ढोल बजवा कर नगरसे बाहर निकाल दिया। मुनिहत्याके पापसे उसे उदुम्बर कुष्ठ हो गया, और वह सातवें दिन मर कर बाईस सागरकी आयुवाले छठवें नरकमें उत्पन्न हुई। तदन तर क्रमसे सातों नरकोंमें घूम कर उस पापिनीने बहुत दुःख भोगे। अत्यन्त भयंकर दुःखोंसे भरी हुई उन नरकोंकी पृथिवियोंसे निकल कर वह तिर्यञ्च गतिको प्राप्त हुई, वहां भी उसका चित्त दुःखसे पीडित रहता था।

उस तिर्यञ्च गतिमें दो बार कुतिया हुई फिर सूकरी शृगाली, चूहा, जहुरा, हस्तिनी, गधी और गोणिका हुई। पश्चात् किञ्चिदन्त दुःखसे युक्त दुर्गन्धित शरीर वाली इन वसुपालकी द्वारा दिव्य पूतिगन्धा हुई है।

मुनिराजके वचन सुनकर जिसका मन संसारसे भयभीत होरहा है ऐसी पूतिगन्धा सब प्राणियोंका हित करनेवाले मुनिराजसे फिर कहा-हे भगवन्! अब मैं किस कार्यसे पूर्वसञ्चित पापको छोड सकती हूं? सो कृपा कर मुझे कहिये। आप इस कार्यमें समर्थ हैं। पूतिगन्धाके वचन सुनकर महामुनिराज जिनका चित्त भक्तिसे भर रहा है तथा जो संसारसे भयभीत हैं ऐसी उस पुत्रीसे बोले-

यदि त [illegible] समस्त पापोंसे छुटकारा और

शोकसे रहित द्रव्यवान पतीको प्राप्त करना चाहती है तो रोहिणी नक्षत्रमें शीघ्र ही उपवास कर जिससे तू फिर कभी दुःख न करेगी।

मुनिराजके वचन सुनकर पूतिगंधाने कहा कि—हे नाथ! रोहिणी नक्षत्रमें उपवास किस प्रकार किया जाता है? यह सुनकर जिसका चित्त भक्तिसे भर रहा है और नेत्र आंसुओंसे युक्त हैं उसी पूतिगंधासे मुनिराज बोले हे पुत्रि! पूर्व दिन पवित्र मुनि-मार्गके अनुसार चार प्रकारका प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये, अर्थात् चार प्रकारके आहारका त्याग करना चाहिये और जिस दिन चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर स्थित हो। उस दिन जिनेन्द्र भक्ति पूर्वक उपवास करना चाहिये। इस प्रकार सत्ताइसवें दिन यह उपवास होता है। अब व्रतके समयका परिमाण बतलाया जाता है जो इस प्रकार है। पांच वर्ष और [illegible] दिन व्यतीत होनेपर सड़सठ ६७ उपवास हो जाते हैं।

हे भद्रे! भव्य जीवोंका कल्याण करनेवाले इस उपवासकी विधि उक्त विधिसे पूर्ण होती है। उपवास कभी भी खण्डित नहीं होना चाहिये। जब उपवासकी समस्त विधि अखण्डित रूपसे पूर्ण हो जाय तब हे पुत्रि! रोहिणी व्रतकी पुस्तक लिखवाना चाहिये, तथा अन्य पुस्तकें भी शास्त्र सम्मत, भव्य और भव्य समूहका हित करनेवाले धर्मके कारणसे प्रभावना करना चाहिये। सुर और असुरोंके द्वारा नमस्कृत भव्य जीवोंको आनन्द दायी श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रकी प्रतिमा कराना चाहिये। विमान, पताका, विविध प्रकारके भृङ्गार, कलश, घण्टा, किङ्किणी, दर्पण, स्वस्तिक, चन्दन, केशर, अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको अंधा करनेवाले पुष्प, पञ्चप्रकारके नैवेद्य, रत्नदीप धूप फल आदिके द्वारा श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र और श्री रोहिणी व्रतकी पुस्तककी पूजा कर्मक्षयके निमित्त भक्तिपूर्वक करना चाहिये। पश्चात् चार प्रकारके संघके लिये आहार, औषधि तथा वस्त्र आदिका यथायोग्य दान देना चाहिये। इस प्रकार पृथिवी तल पर जो स्त्री

भक्तिपूर्वक इस रोहिणीव्रतको करती है वह क्रमसे केवलज्ञान तथा मोक्षको प्राप्त होती है।

मुनिराजके उक्त मनोहर वचन सुनकर पूतिगन्धाने उपवासकी यह विधि ग्रहण की। तदनन्तर भक्तिसे जिसके रोम हर्षित हो रहे हैं ऐसी पूतिगन्धाने दुर्गन्धको छिन्न करनेवाली उपवासकी यह श्रेष्ठ विधि ग्रहण कर योगिराजसे कहा।

हे भगवन्! मेरे ही समान दुर्गन्धसे युक्त किसी अन्य पुरुषने यदि पहले इस उपवास विधिको ग्रहण किया हो तो इस समय सुगम कहिये। पूतिगन्धाके वचन सुनकर मुनिराज पुनः बोले। जिस समय मुनिराज कह रहे थे उस समय पूतिगन्धा अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकमें लगाये हुई थी। हे पुत्रि! तेरे समान दुर्गन्धसे युक्त अन्य पुरुषने समस्त दुःखोंका क्षय करनेवाली यह मनोहर उपवास विधि स्वयं धारण की है।

मुनिराजके मनोहर वचन सुनकर पूतिगन्धाने फिर कहा कि हे भगवन्! यह विधि कहां और किसने की है, सो इस समय सुगम रीतिसे आप मनोज्ञ वक्ता हैं। यह सुनकर मुनिराज सामने बैठी हुई, फिर धर्मध्यानमें चित्तको लगानेवाली तथा फिर भक्तिसे नम्र पूतिगन्धासे इस प्रकार कहने लगे।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक अङ्ग नामका देश है, उसमें सिंहपुर नामका श्रेष्ठ नगर है। सिंहसेन उस नगरके राजा थे और कनकप्रभा उनकी रानी थी। उन दोनोंके पूतिगन्ध नामका पुत्र था। एक समय विमलप्रभ नामक जिनराजको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उनके ज्ञानकल्याणमें देवोंका आगमन हो रहा था। उसी समय पूतिगन्ध महलकी छतपर बैठा हुआ था, उसने आकाशमें जाते हुए देदीप्यमान असुरकुमारको देखा और देखते ही क्षणमात्रमें मूर्छित होगया। चन्दन मिश्रित जलसे सींचनेपर वह क्षणभरमें पुनः चेतनको

प्राप्त हुआ। इस घटनासे पूतिगन्धकुमारको जातिस्मरण हो गया। वह उसी समय अपने पिता सिंहसेन राजाके साथ विमलमदन केवलीके पास गया। वहां दोनोंने तीन प्रदक्षिणा दीं, भक्तिपूर्वक केवली जिनेन्द्रकी वन्दना की, धर्मश्रवण किया और उनके समक्ष दोनों ही विनीत भावसे बैठ गये।

तदनन्तर सिंहसेनने अवसर पाकर बड़ी ही भक्ति और आदरके साथ उन जिनराजसे अपने मनकी बात पूछी। हे स्वामिन्! मेरा पुत्र दुर्गन्धसे युक्त किस कारण हुआ है? किस कारण मूर्च्छाको प्राप्त हुआ है और किस कारण मूर्च्छाको छोड़कर यहां आया है? यह सब इस समय मुझसे कहिये।

राजाके वचन सुनकर जिनराज बड़े सन्तोषसे कहने लगे। हे नरेन्द्र! तुम्हारे इस पुत्रने पूर्वभवमें मुनिहत्या की थी जिससे यह नाना योनियोंके जलसे भरे हुए संसाररूपी सागरमें भ्रमण करता रहा। अब तुम्हारा पुत्र हुआ है और मुनिहत्याके पापसे दुर्गन्धयुक्त हुआ है। ऊपर असुरकुमारको जाता देख इसे नरकका स्मरण हो आया जिससे भयभीत हो गया है और भयभीत होनेसे ही मूर्छित हो गया था। इस घटनामें इसे जाति स्मरण हुआ है।

तदनन्तर भक्तिमें चित्त लगाते हुए राजाने जिनराजसे कहा कि— हे भगवन्! इसने किस प्रकार और किस लिये मुनिराजका वध किया था सो मुझसे कहिये। राजाके वचन सुनकर केवली पुनः धैर्यसे सम्बन्ध रखनेवाले मुनि हिंसाका कारण कहने लगे।

कलिङ्गदेशके समीप निम्बपर्वत है, उसपर अनेक वृक्षोंसे व्याप्त अतिशय सुन्दर बड़ा भारी अशोक वन है। उसमें अत्यन्त ऊंचे स्तम्भकरी और श्वेतकरी नामके दो हाथी थे जो यूथके स्वामी थे तथा मदसे सुशोभित थे। एक दिन दोनों ही हाथी किसी महा-नदीके तटमें प्रविष्ट हुए और जलके कारण परस्पर युद्ध कर

दोनों ही मर गये। मरकर बिलाव और चूहा हुए फिर साँप और नेवला हुए फिर नीलोत्पलके समान आभा तथा गुमचीके समान लाल नेत्रोंवाले चाष पक्षी और नाग विशेष हुए, फिर कानोंको मनोहर शब्द करनेवाले कबूतर हुए। फिर, कनकपुर नामके रमणीय नगरमें सोमप्रभ राजा थे उसकी सोमश्री नामकी चन्द्रमुखी तथा प्रिय वचन बोलनेवाली स्त्री थी। इसी राजाका एक सोमभूति नामका ब्राह्मण पुरोहित था, सोमिल्ला नामसे प्रसिद्ध उसकी सुन्दरी स्त्री थी। इसी सोमिल्लाके दोनों सोमशर्मा और सोमदत्त नामके पुत्र हुए। दोनों ही विज्ञान कलामें युक्त तथा वेद और स्मृति शास्त्रके विद्वान् थे। सुन्दर शरीरवाली सुकान्ता सोमशर्माकी स्त्री थी, और प्रसिद्ध लक्ष्मीमती सोमदत्तकी पत्नी थी। कुछ समय बाद जब सोमभूति पुरोहितका देहान्त होगया तब राजाने पुरोहितका पद सोमदत्तको दे दिया। सोमशर्मा नामका जेठा भाई छोटे भाईकी स्त्री लक्ष्मीमतीके साथ प्रीति रखता था। सोमशर्माकी स्त्री सुकान्ता कुछ मृदु प्रकृतिकी थी। वह सोमदत्तसे प्रतिदिन यह बात कहा करती थी कि हे सोमदत्त! तुम्हारी दुराचारिणी लक्ष्मीमती प्रिया सचमुच हमारे पतिके साथ रहती है। सुकान्ताके द्वारा निवेदित इस बातको सुनकर सोमदत्त बहुत दुखी हुआ। वह उन दोनोंके निधर्मीपनको देखकर घरसे बाहर निकल गया और सोमशर्माकी कुलागम महावैराग्यको पाकर धर्मसेन मुनिराजके समीप आनन्दसे दीक्षित होगया। जब राजाको इस बातका पता चला कि सोमदत्त तपश्चरणमें स्थित हो गया है अर्थात् तप करने लगा है तब उसने सोमशर्माको पुरोहितके पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

एक बार सोमप्रभ राजाने शकट नामके महादेशके राजा वसुपालके पास दूत भेजा। दूतने समीप जाकर राजाको प्रणाम किया और फिर योग्य आसन पर बैठकर हर्षित चित्त होते हुए इस प्रकार निवेदन किया। निवेदन करते समय उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर

'योगी च ज्ञानी च तपोधनाश्च,
शूराश्च राजा च सहस्रदश्च।
ध्यानी च मौनी च तथा शतायु-
मद्दर्शनादेव पुनाति पापम्॥"

अर्थात्-योगी ज्ञानी तपस्वी शूरवीर राजा हजारोंका दान करनेवाला ध्यानी मौनी और शतायु पुरुष ये दर्शन मात्रसे पापी जीवको पवित्र कर देते हैं।

इसलिये हे राजन! शत्रुको जीतनेके लिये प्रस्थान करने वाले हम सबको मार्गमें इन महामुनिका मिलना शकुनरूप है। यह समस्त ममारका पवित्र करते हैं इन्होंने काम आदि रज शत्रुओंको नष्ट कर दिया है इसलिये इन मुनि महाराजसे, आगे हम लोगोंका कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा। इन साधुके दर्शनका फल है कि मगधेश्वर प्रातःकाल ही त्रिलोकसुन्दर नामका हाथी सामने लाकर उपस्थित करेगा।

विश्वदेव पुरोहितके यह वचन सुनकर राजा उस समय प्रसन्नचित होता हुआ चुप होरहा। अयानन्तर दूसरा दिन होते ही मगधेश्वर त्रिलोकसुन्दर नामका हाथी तथा अन्य बहुतसी भेंट लेकर राजाके पास आया। राजा सोमप्रभने भी उनका भक्तिसे सन्मान किया, और फिर हाथी लेकर सेनाके साथ अपने नगरमें प्रवेश किया। उधर राजा अन्य कार्योंमें लीन थे कि इधर सोम शर्माने पूर्व संस्कारसे प्रतिमायोगसे विराजमान उन मुनि महाराजका शीघ्र ही तलवारसे घात कर दिया, और राजाके साथ ही नगरमें प्रविष्ट हो गया। तदनन्तर प्रातःकाल होने पर राजा सोमप्रभको जब इस बातका पता चला कि सोमशर्माने उन सामदत्त नामके मुनिराजको मार डाला है तब बहुत ही कुपित हुए। मुनिहिंसा करनेवाले दुराचारी पापी सोमशर्माको राजाने

दण्डखण्डन दण्डित किया अर्थात् उसे अपमानित कर नगरसे बाहर निकाल दिया। मुनिहिंसाके प्रभावसे अत्यन्त दुष्ट बुद्धिवाले उस सोमशर्माको सात ही दिनमें कुष्ट रोग हो गया। कुष्ट रोगसे उसका समस्त अङ्ग गल गया, और बड़े दुःखसे मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ। बड़े कष्ट भोगकर वहांसे निकला और स्वयंभूरमण समुद्रमें एक हजार योजन लम्बा तिमिङ्गल जातिका मच्छ हुआ। फिर मरकर छठवें नरकमें बाइस सागरकी आयुका धारक नारकी हुआ। वहांका समय पूरा कर बड़े कष्टसे निकला, और वहां बड़े हाथियोंको भयभीत करनेवाला दुष्ट सिंह हुआ। वहांसे भी मरकर पांचवें नरकमें उस आकारको धारण करनेवाला और बहुत कष्टको भोगनेवाला नारकी हुआ। वहांसे बड़े कष्टसे निकल कर गुमची फलके समान लाल लाल आंखोंवाला काला भयंकर काय सर्प हुआ। फिर मरकर चौथे नरक गया जहांसे निकल कर [illegible] हुआ। [illegible] मरकर तीसरे नरक गया। वहांसे बड़े कष्टसे निकल कर [illegible] पक्षी हुआ, फिर मर कर दूसरे नरक गया। वहांसे [illegible] निकल कर सफेद रङ्गका गधा हुआ। गधा भी [illegible] दुःखसे भर कर प्रथम नरकमें एक सागरकी [illegible] नारकी हुआ। हे राजन्! वहांसे निकल कर [illegible] कुमार नामका पुत्र हुआ है इसका शरीर [illegible] निरन्तर दुर्गंध निकलती रहती है।

उस समय पूतिगन्धकुमारने अपने [illegible] कर अंतिम नत मस्तक हो मुनिराजसे [illegible] अन्य जन्ममें किये हुए इस तीव्र पाप [illegible] हो रहा है। उसके वचन सुनकर [illegible] सचमुचमें दुःखी है तो रोहिणीमें उपवास [illegible] कर पूतिगन्धकुमारने उनसे कहा कि [illegible]

किया जाता है। यह सुनकर सामने बैठे हुए पूतिगन्धसे मुनिराजने कहा कि हे वत्स ! जिस दिन चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रपर हो उस दिन यह उपवास किया जाता है। ऐसा करनेसे तीन वर्षमें चालीस उपवास हो जाते हैं और पांच वर्ष तथा नौ दिनमें सड़सठ उपवास हो जाते हैं। ये उपवास समस्त पापोंको नष्ट करनेवाले होते हैं। इस प्रकार उपवासकी विधि समाप्त होनेपर चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंका श्रेष्ठ पट बनवाना चाहिये और उसके नीचे शोक दूर करनेके लिये अशोक तथा आठ पुत्र और चार पुत्रियोंसे सहित रोहिणीका चित्र बनवाना चाहिये। वासुपूज्य जिनेन्द्रकी उत्तम प्रतिमा बनवाकर उसकी बड़े उत्सवमें पूजा करना चाहिये। चार प्रकारके संघको आहारदान, औषधिदान तथा वस्त्र आदि भक्तिपूर्वक योग्य विधिसे देना चाहिये। विधिपूर्वक किये हुए इस व्रतके माहात्म्यसे चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, देव धरणेन्द्र मनुष्य तथा विद्याधरोंमें जन्म पाता है सदा दूसरोंसे पूजनीय और वन्दनीय रहता है तथा अन्तमें समस्त दुःखोंका क्षयकर निश्चयसे मोक्षको प्राप्त होता है।

मुनिराजके उपदेशसे पूतिगन्धने जैन धर्ममें दृढ़ विश्वास रूप सम्यग्दर्शन रोहिणी नक्षत्रके दिन उपवास, पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ग्रहण किये। इन सम्यग्दर्शन आदिकी सामर्थ्यसे पूतिगन्धवाहन सुगन्धवाहन हो गया, सो ठीक ही है धर्मसे क्या नहीं होता ? इस प्रकार जैनधर्मका पालन कर जब पूतिगन्धवाहनकी एक माहकी आयु अवशिष्ट रह गई तब उसने अपना राज्य श्री विजय नामक पुत्रके लिये दे दिया, और स्वयं चार प्रकारकी श्रेष्ठ आराधनाओंकी आराधना की, अन्तमें श्रावक धर्ममें ही स्थिर चित्त रह कर उसने मरण किया जिससे देव दुन्दुभियोंके शब्दसे भरे हुए प्राणत नाम स्वर्गमें बीस सागरकी आयुवाला महर्द्धिक देव हुआ। वहाँ उपपाद शय्यापर उत्पन्न हुआ, उसकी बुद्धि

अत्यन्त उत्कृष्ट थी, हार और कुण्डलोंसे उसका शरीर सुदेदीप्य मान होरहा था, तथा जन्मसे ही उसे अवधि ज्ञान था। उसने अचिन्त्य दिव्य शरीर देख कर शय्या तलसे मुख ऊपर उठाया और अपने अलंकृत उत्तम शरीर पर फिर दृष्टिपात किया। वह विचारने लगा कि यह क्या है? मैं कहां आगया हूं? मेरा कौनसा जन्म है? मुझे यह उत्तम सुख किस कारणसे प्राप्त हुआ है? यह मेरी ओर मुख उठाये हुए कौन लोग हैं? यह अत्यन्त सुन्दर स्थान कौनसा है? देवोंके योग्य उपचारसे उसने जान लिया कि यह स्वर्ग है। मणिमय आभूषणोंकी किरणोंसे उस देव जन्मकी स्मृति हो आई। वह देव स्नानसे पवित्र होकर अभिषेक गृहमें गया वहां देवोंने उसका विधि पूर्वक अभिषेक किया। अभिषेकके बाद देव उसे अलंकार गृहमें ले गये वहां उसे रत्नमय पीठपर विराजमान कर मणिमय आभूषणोंसे अलंकृत किया। फिर अभिषेकके समान चञ्चल चमर ढोले। उसी समय दिशाओंमें सहसा जय जय शब्दका उच्चारण होने लगा। एक ओर देवोंके गगनचुम्बी वादित्रोंके साथ देव स्तुतियोंका पाठ होने लगा। अनन्तर देदीप्यमान रत्नोंकी किरणोंसे सम दिखनेवाले व्यवसाय गृहमें विराजमान उस देवके पास जाकर दूसरे देव प्रणाम कर निम्न लिखित उचित प्रार्थना करने लगे कि हे देव! पहले जिनराजका पूजन करो, फिर सैन्य सामग्री देखो, फिर नाटकका अवलोकन करो और उसके बाद देवाङ्गनाओंकी ललित चेष्टाओंका सन्मान करो।

प्रतिगादितात्मका जीव अपने सामने खड़े हुए तथा आनन्दसे स्तुति करनेवाले देवोंको देखकर पुनः विचारने लगा कि मैंने पूर्व भवमें क्या दान दिया था? किसका ध्यान किया था? और कौन तप तपा था जिससे कि पुण्यका सञ्चय कर मैं इस स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हूं। अवधिज्ञान रूपी लोचनसे अपने समस्त पूर्वभव देखकर वह सम्यग्दर्शी सर्वज्ञ जिनदेवकी स्तुति करने लगा, और विमानमें

बैठ ही हाथ जोड़ गिरने लगा कर बोला कि मेरा उस गुरु लिये नमस्कार हो जिसने कि मुझे यह धर्म ग्रहण कराया था। यही सदा काल वन्दनीय और पूजा करने योग्य है जिसके प्रसादसे मैं इस उत्तम देव लोकमें उत्पन्न हुआ हूं। इस प्रकार पूतिगन्धका जीव देव वहां दुविचार साथ मनावाञ्छित सुख भोग भोगता हुआ रहने लगा। अब मैं पूतिगन्धके जीवका जो इस समय अपरिमित वैभवका धारक देव था उत्पत्ति स्थान कहता हूं।

इस जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसमें मेरु यावत चौड़ी बारह योजन लम्बी, समस्त धनसे सम्पन्न तथा पृथिवीमें अत्यन्त प्रसिद्ध पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। इसमें अपनी कीर्तिसे समस्त पृथिवीको धवल करनेवाले विमलकीर्ति नामक राजा थे। श्रीमती उनकी रानीका नाम था। पूतिगन्धका जीव इन दोनोंके ही रूप सम्पन्न एवं समस्त लोगोंके मनको हरण करनेवाला अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ, अर्ककीर्तिका एक मतिमें नामका मित्र था जो इसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था। यह बालक पढ़नेके लिये श्रुतकीर्ति नामके उपाध्यायको सौंपे गये उनके पास रहकर दोनों शीघ्र ही व्याकरणशास्त्रमें सम्पन्न शास्त्र और शास्त्रमें परिचय करनेवाले तथा शास्त्र रूपी समुद्रके पारगामी होगये

उसके मथुरानगरीमें मणियोंसे समुद्रको जीतनेवाला सागरदत्त नामका एक बड़ा धनी सेठ था। उसकी रूपवती कमलनयना जयमती नामकी स्त्री थी। इन दोनोंके एक सुमन्दिर नामका पुत्र था। उस समय दक्षिण मथुरामें लक्ष्मी सम्पन्न लोकप्रिय नन्दिमित्र नामक सेठ रहता था उसकी धारदत्ता नामकी स्त्री थी। उन दोनोंके सुनीत और सुमति नामकी दो कन्यायें थीं। अतिशय कान्तिकी धारक ये दोनों पुत्रियां मातापिताने उपर्युक्त मन्दिर नामक पुत्रके लिये विधिपूर्वक प्रदान की। उनके विवाहके समय अर्ककीर्ति और

मयसेन यह मानों चित्र विहार करते हुए कलिंग मथुरा पहुँचे। अर्ककीर्ति उन कन्याओंको देखकर विस्मित चित्त हो गया। अर्ककीर्तिकी सम्मतिसे मयसेनने इन कन्याओंका हाथ पकड़ लिया और इन्हें लेकर यह ज्योंही जाने लगा त्योंही नगरवासियोंने उनके हाथसे वे मानों कन्याएँ छीन लीं। तदनन्तर उन सबोंने शीघ्र ही पुण्डरीकिणी नगर जाकर राजा विमलकीर्तिसे यह यह सब बात कही। उनके बातोंको सुनकर राजा बहुत ही कुपित हुए जिससे उन्होंने उन दोनोंको शीघ्र ही अपने देशसे निकाल दिया। तदनन्तर गोहन जिनके सुपरुप हुए दिखाई देते रहे हैं वह मयसेन और अर्ककीर्ति पत्तनादिक समुद्र गुप्तादिक वीतशोकपुर पहुँचे। वहाँ जातिस्मरण विमलवाहन नामक राजा व विमल विभूति धारक विमलश्री रानी रहती थी। इन दोनोंके अनुक्रमसे जिनदासादिक कुल आठ पुत्रियाँ थीं जिनके नाम इसप्रकार हैं—१ जयमति, २ सुकान्ता, ३ कनकमाला, ४ सुप्रभा, ५ सुमति, ६ सुमना, ७ सुप्रतिष्ठा और ८ विमलप्रभा। ये सभी बड़ी विज्ञान सम्पन्न और रतिके समान रूपको धारण करनेवाली थीं। अतिशय रूपवती जयमतिके वास्ते निश्चय करके मन्दवाहीने लिखित शास्त्र द्वारा निश्चय किया कि जो चन्द्रवेधको वेधेगा वही जयमतीका भर्ता होगा। तदनन्तर चन्द्रवेधको वेध करनेके लिए अनेक समस्त राजकुमार अपने अपने पुत्रोंको और परिवारको यानकी इच्छासे सब राजकुमार हर्षित होते हुए आये थे परन्तु उनके रूपसे जिसका चित्त परिपूर्ण हो रहा है ऐसा कोई भी राजकुमार चन्द्रवेधको वश नहीं कर सका। अर्ककीर्ति भी मयसेनके साथ वहाँ पहुँचा और चन्द्रवेधको देखकर बहुत ही हर्षित हुआ। शास्त्रोंमें जानियाने जो उसका मन्दिरकी ओर पारद सदा साक्षात् चन्द्रवेधका जैसा लक्षण कहा है वह मैं यहाँ कहता हूँ—

नीतिके साथ कौतुक करता हुआ अर्ककीर्ति कुमार भी यहाँ

भक्तिका धारक सम्यक्त्वका पालन करनेवाला था। मनोरमा नामकी उसकी शुभ स्त्री थी। जिनदत्तकी आठ पुत्रियाँ थीं जो अतिशय रूपवती थीं, गानविद्या समान मनोहर उनका शील था और यौवनसे युक्त थीं। नन्दा, कान्ता, विपुला, वसन्ती, कनकमाला, जिनदत्तप्रभा, जयमति और सुकान्ता ये उनके नाम थे। उन सबका शरीर अत्यंत सुंदर था। राजा जनसमुदायके साथ उद्यानमें गया था। जब वहांसे लौट कर नगरमें आ रहे थे उस समय अशनिगिरि नामका एक बलवान ऊंचा हाथी दिशाओंमें उन्मत्त होकर बंधनसे छूटकर भागा और मार्गमें कई लोगोंको मार डाला। अशनिगिरि द्वारा किये गये मनुष्योंका विध्वंस कर रहा है तब वह सुवर्ण और मणियोंसे जड़े हुए अपने विमानसे उतर कर सेठकी कन्याओंको पकड़ कर हाथीके आगे खड़ा हो गया।

राजा अपने परिवारके साथ अशनिगिरि हस्तिको सामने देखने लगा। उसने युद्ध करके हाथीके दांतोंमें अपने पैरोंको ठानकर लगाई और हाथीके गंडस्थलपर चढ़ कर उसे वशमें कर लिया। साथ ही अन्य बालोंके कारण लोगोंने उसपर सवार होकर, और आनन्दसे नगरमें प्रविष्ट हुआ। अशनिगिरि हाथी पर चढ़े हुए राजाके निमित्त सेठने आदरसे उसे अपनी उन आठों कन्याएँ प्रदान कर दीं। तदनन्तर उनके साथ कुछ दिन तक भोग भोगकर अर्ककीर्ति वीतशोक मनुष्योंसे सुशोभित एक अतिशय सुन्दर वीतशोक नगरमें पहुंचा, वहां सबजन नामक मित्रको अपने साथ लेकर उसकी बड़ी प्रसन्नताके साथ पुण्डरीकिणी नगरमें प्रवेश किया। नगरके द्वार द्वारपर पहुंचते ही इन लोगोंने विमानसे उतर कुछ दूर और गमन करके, तथा उसके बाद भरकर उतर सारे खड़े हो गये। नगरके भीतर कहीं किसी वस्तुका क्रय करना कहीं किराना सुगन्धित करना, कहीं ताम्बूल तथा वस्त्र आदिका बचना, कहीं पासोंसे ज्त क्रीडा करना, तथा कहीं रत्न विक्रय करना आदि विविध कौतुक करते रहे। गणिकाका

वन रम्य कर उन्होंने पिताके आगे लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला नटका उत्कृष्ट नृत्य किया। इस प्रकार ज्ञान-सम्पन्न अर्ककीर्ति अपने विज्ञानको प्रकट करता हुआ नगरमें मनकी मनुष्योंके समक्ष उनके कौतुकको बढ़ानेवाले अनेक कार्य करता रहा। अन्तमें उसने विक्रियासे चतुरङ्ग सेना बनाकर नगरकी समस्त गायोंको हर लिया और युद्धके लिये राजाका आह्वान किया। गायोंका हरण जानकर राजा बहुत ही क्रोधयुक्त हुए और उसके साथ युद्ध करनेके लिये शीघ्र ही नगरसे बाहर निकले। तदनन्तर घोड़ा घोड़ेके साथ, हाथी हाथीके साथ, पैदल पैदलके साथ और रथी रथवालेके साथ युद्ध करने लगे। कहीं एक हाथीने दूसरे हाथीको मार दिया, कहीं किसी घोड़ेने दूसरे घोड़ेको मार दिया, कहीं पैदल सिपाहीने दूसरे पैदल सिपाहीको नष्ट कर दिया और कहीं रथवालेने दूसरे रथको चूर्ण कर डाला। इस प्रकार मनुष्योंका क्षय करनेवाला बहुत भारी संग्राम होनेपर डरपोक मनुष्य भाग गये, शूरवीर खड़े रहे और सुर तथा असुर आनन्दसे युद्धको देखते रहे। तदनन्तर अर्ककीर्तिने धनुष खींचकर पिताके समीप अपने नामसे अङ्कित बाण छोड़ा।

अर्ककीर्तिके द्वारा छोड़ाहुआ बाण मन्द मन्द गतिसे जाता हुआ पिताकी गोदमें पड़ा। अपनी गोदमें अपने पुत्रके नामाक्षरोंसे अङ्कित बाण देखकर राजा शीघ्र ही प्रसन्न हुआ। सन्तोषसे उसका हृदय भर गया। फिर क्या था, युद्ध बन्द कर पिता पुत्र दोनों ही वाहनसे उतर कर एक दूसरेके सम्मुख पहुंचे। दोनोंने ही समस्त शरीरमें व्याप्त होनेवाले सन्तोषसे परस्पर गले लगकर एक दूसरेका आलिंगन किया। दोनोंके ही हृदय आनन्दसे भर रहे थे और दोनों ही हर्षके मधुर शब्दोंका उच्चारण कर रहे थे। पुत्रके आनेके हर्षमें राजाने कुशल समाचार पूछकर तथा कुछ वार्तालाप कर याचकोंके लिये मन चाहा दान दिया। और शीघ्र ही अपने विजयी अर्ककीर्ति पुत्रके लिये समस्त राजाओंके समक्ष अपनी सम्पूर्ण लक्ष्मी परिग्रह छोड़कर

परिणामोंसे श्रीधर मुनिके समीप तप ग्रहण कर लिया। और कठिन तपश्चरणके द्वारा समस्त कर्मोंको नष्ट कर निर्वाण प्राप्त कर लिया।

अर्ककीर्ति समस्त चक्रवर्तीकी उत्कृष्ट लक्ष्मी पाकर अपने विशाल राज्यका संचालन उस प्रकार करने लगा जिस प्रकार कि स्वर्गमें इन्द्र अपने विशाल राज्यका करता है। एक दिन राजा अर्ककीर्ति महलकी शिखर पर बैठे हुए थे कि इतनेमें उनकी दृष्टि हिमालयकी शिखरोंकी समान आभावाले एक चित्र विचित्र कूटास विराजित मेघपर पड़ी। वे घड़ियां मिट्टीसे बने मेघका आकार पृथ्वी पर लिखनेके लिये उद्यत हुए कि इतनेमें वह मेघ विलीन होगया। उन्होंने राज्य चलानेके योग्य, महागुणवान् यशोमती रानीसे उत्पन्न बड़े पुत्र विमलकीर्तिको बुलाया और सामन्तों तथा मन्त्रियोंके समक्ष उस यशस्वी पुत्रके लिये राज्यपद प्रदान किया।

अन्तमें महावैराग्यसे भरे हुए राजा अर्ककीर्तिने समस्त लोगोंसे पूछकर बड़े हर्षके साथ शीलगुप्त नामक मुनिराजके समक्ष जिन दीक्षा धारण करली। उन्होंने ऐसा उग्र तप किया जो कि साधारण मनुष्योंको दुष्कर था। अन्तमें जब आयु एक मासकी अवशिष्ट रही तब सल्लेखना धारण की। और चार प्रकारकी आराधना आराध कर निर्मल अभिप्रायसे मरण किया। तदनन्तर जहां देवदेवियों द्वारा आनन्द किया जा रहा है ऐसे नाना प्रासादोंसे मनोहर अच्युत स्वर्गमें वह बाईस सागरकी आयुवाला देव हुआ। पहले जिसका वर्णन किया जा चुका है, ऐसी पूतिगंधा रानी भी अपने आपको श्रावकके व्रतोंसे भूषित किया था और रोहिणी नक्षत्रके दिन उपवास रखकर समाधिमरण किया था। व्रतके प्रभावसे वह पूतिगंधा भी पन्द्रह पल्य तक सुख भोगनेवाली उस अच्युत स्वर्गके देवकी महादेवी हुई। उसके साथ मनवाञ्छित भोग भोगकर आयुके अन्तमें तुम इस भूतल पर उत्पन्न हुए हो।

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशमें एक

हस्तिनागपुर नामका नगर है, उसके राजा वीतशोक हैं और उनकी रानी विद्युत्प्रभा। विद्युत्प्रभा बिजलीके समूहके समान प्रभावाली है। हे राजन्! पुत्र जन्मकी इच्छा करनेवाले उन दोनोंके तुम अशोक नामक कुलपुत्र हुए हो। पूर्तिगंधा, जो अच्युत स्वर्गमें तुम्हारी प्रियदेवी थी, वह आयुका क्षय होनेपर स्वर्गसे च्युत होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुई है। यह अंगदेशकी चम्पापुरी नगरीमें वहांके राजा मघवाकी श्रीमती नामक रानीसे रोहिणी नामक पुत्री हुई है। हे राजन्! वह रोहिणी तुम्हारे समीप ही स्थित है, प्रसन्नचित्त है, तुम्हारी महादेवी है और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है।

चारण ऋद्धिधारी रूप्यकुम्भ मुनिराजके ऐसे वचन सुनकर अशोक राजाने उनसे पुनः प्रार्थना की कि हे नाथ! अधिक कहनेसे क्या? मुझपर अनुग्रह करके मेरे पुत्र और पुत्रियोंके भवान्तर भी कहिये। अशोकके वचन सुनकर रूप्यकुम्भ मुनि अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे देखकर पुत्र और पुत्रियोंके भवान्तर कहने लगे—

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें उत्तमोत्तम रत्नोंसे भरा हुआ एक शूरसेन नामका देश है। उसकी उत्तर मथुरा नामकी नगरीका शासन उस समय राजा श्रीधर करते थे। उनकी महादेवीका नाम विमला था। इन दोनोंके कमला नामकी उत्तम पुत्री थी। इसी राजाके दरिद्र पुरमें उत्पन्न हुआ एक अग्निशर्मा नामका धर्मभागी ब्राह्मण था। उसकी तिलका नामकी स्त्री थी। निरन्तर चित्त प्रसन्न मिले रहे हैं इस तरह उन ब्राह्मण ब्राह्मणीसे सात पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं–१ अग्निभूति, २ श्रीभूति, ३ वायुभूति, ४ विशाखभूति ५ शिवभूति, ६ महाभूति और सुभूति। इन सातोंमें सबके नाना शास्त्रोंमें निपुण और दरिद्रतासे पीड़ित वे सब पुरुष पटना पहुंचे। उस समय वहां सुप्रतिष्ठ राजा थे, रूपवती उनकी रानी थी और दोनोंके सिंहके समान गम्भीर इन्द्र परनेवाला महा शक्तिशाली

नामका पुत्र था । उसी पटना नगरमें एक विशोक नामका दूसरा भूपति था । उसकी रूपश्री नामकी भार्या थी और दोनोंके कमला नामकी पुत्री थी। माता पिताने अपनी सुन्दरी पुत्री कमला मित्र रथके लिये प्रदान की । उनका विवाह देखकर व दरिद्र ब्राह्म विचार करने लगे कि पापसे मुक्त करनेवाले हम लोगोंने पूर्वभव समस्त दुःखोंका नाशक दयामय जैनधर्म धारण नहीं किया। धर्म युक्त पुरुषोंको विभूतियां प्राप्त होती हैं और महा पाप करने वालोंको महा दुःख उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार धर्म और अधर्म प्रत्यक्ष फल देखकर उन वसुभूति आदि ब्राह्मणोंने यशोधर मुनि राजके पास जाकर आदरसे धर्मका स्वरूप पूछा। उनके प्रियवच सुनकर यशोधर मुनिराजने उन सातों पुरुषोंके लिये उत्तम धर्म स्वरूप कहा । साथ ही यह बतलाया कि जो मनुष्य मनुष्यत्व पाकर भी धर्म नहीं करता है वह मानों निधि देखकर आंखें रहित होजाता है । धर्मसे ही प्राणियोंको कुल सम्पत्ति प्राप्त हो है, धर्मसे ही दिव्य रूप मिलता है, धर्मसे ही धनकी प्राप्ति हो है, और धर्मसे ही कीर्ति फैलती है । धर्म, पृथिवीपर कल्पवृ मन्दार समान है, धर्म उत्कृष्ट चिन्तामणि है, धर्म शुभ धन धारा है और धर्म मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु है। अधि कहनेसे क्या ? नेत्र और इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले जो जो मनो पदार्थ दिखाई देते हैं हे ब्राह्मणो ! वह सब धर्मका फल है।

'यह सब धर्मका फल है तथा अधर्मसे मनुष्यको दुःख हो है' ऐसा मानकर उन सभी ब्राह्मणोंने यशोधर मुनिराजके सम दीक्षा धारण कर ली। तदनन्तर तपश्चरण कर उन सबने आ अन्तमें समाधि मरण किया जिससे वे सब सौधर्म स्व महर्द्धिकदेव हुए व दो सागर तक सुख भोगकर वहांसे च्युत और अब वीतशोक आदि रोहिणीके पुत्र हुए हैं। यह जो लो पाल नामका आपका अभ्युदयशाली पुत्र है वह भी पूर्वजन्मम

रक था। निर्मल बुद्धिके धारक उस भुजंगने पिहितास्रव मुनि-
के समीप बड़े आदरसे सम्यग्दर्शन आदि श्रावकके व्रत ग्रहण
किये थे। वह गगन गामिनी विद्यासे समस्त कर्मभूमियोंमें स्थित
अकृत्रिम सभी जिन चैत्यालयोंकी भक्तिसे पुलकित शरीर होता
हुआ तीनों काल वन्दना करता था। जिन भक्तिमें तत्पर रहनेवाला
वह भुजंग आयुके अन्तमें समाधि मरण कर देव दुन्दुभियोंसे
शब्दायमान सौधर्म स्वर्गमें प्राप्त हुआ। पचीस पल्य तक दिव्य
सुख भोगनेके बाद वहांसे च्युत होकर रोहिणीका लोकपाल नामका
पुत्र हुआ है। हे राजन्! यह मैंने तुम्हारे पुत्रोंका भवान्तर
सम्बन्धी वर्णन किया, अब तुम्हारी पुत्रियोंका भवान्तर कहता हूँ—

इस मनोहर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें धन धान्य और
मनुष्यसे भरा हुआ वन्ठ नामका देश है। उसमें जो विजयार्ध
पर्वत है उसकी दक्षिण श्रेणिमें अलकापुरी है, उसके राजाका नाम
गरुडसेन था। निर्मल कान्तिकी धारक कमला रानाकी प्रिय रानी
थी। उन दोनोंके चार पुत्रियाँ थीं जो रूपसम्पन्न थीं, कमलके
समान सुगन्धवाली थीं और जिनके शरीर सुवर्णके समान आभावाले
थे। उनके नाम क्रमसे इस प्रकार हैं—कमलश्री, कमलगन्धिनी,
कमला और विमलगन्धिनी। वे चारों रूपवती पुत्रियाँ एकवार
प्रसन्न चित्तसे वृक्ष फल और फूलोंसे सुशोभित उद्यानमें गई वहाँ
सुमनाचार्य नामक चारण ऋद्धिधारी श्रेष्ठ मुनिराजसे उन्होंने बड़े
कौतुकके साथ उपवासका माहात्म्य पूछा—हे नाथ! लोकमें जो
यह उपवास नामसे कहा जाता है तथा उसे शरीरके धर्म बतलाया
जाता है वह क्या वस्तु है? सुमनाचार्य उनके यथार्थ वचन
सुनकर उनके लिये यथाक्रमसे उपवासका लक्षण कहने लगे—

हे पुत्रियो! सिद्धान्त शास्त्रके पारगामी जिनराज अशन पान
खाद्य और स्वाद्यके भेदसे आहारको चार प्रकारका कहते हैं।
यह चारों प्रकारका आहार बल और कान्तिका प्रदान करनेवाला

है। जिन प्रणीत मुनिमार्गमें पवित्र मुनि इन चतुर्विध आहारका त्याग करते हैं वह उपवास कहलाता है। इसके सिवाय सब प्रकारका आहार ग्रहण करते हुए भी लोकमें जो उपवास माना जाता है वह कभी उपवास नहीं हो सकता। न जाने उन शास्त्रोंके ज्ञाता इस अनर्थपूर्ण बातको उपन्यास क्यों करते हैं? उनमें यही लिखा है कि फल, फूल, दूध, पानी, हविद्रव्य, ब्राह्मणका सत्कार, गुरुके वचन और औषधि ये आठ प्राणियोंके धर्मकार्य हैं। इन आठके सेवनसे व्रत नष्ट नहीं होता। परन्तु यह निश्चित है कि इन आठका सेवन करते हुए उपवास नहीं होता और न धर्मके इच्छुक प्राणियोंको उनमें उपवासका फल ही प्राप्त होता है। हे धर्ममें तत्पर रहनेवाली पुत्रियो! पवित्र मुनिमार्गके अनुसार सब प्रकारके आहारका त्याग करनेसे ही उपवास होता है। हे पुत्रियो! अब मैं उपवासका माहात्म्य कहता हूं उसे शुद्ध चित्तसे सुनो—

यह जीव अज्ञानसे जो भयंकर पाप करता है वह सब उपवाससे इस प्रकार जल जाते हैं जिस प्रकार कि अग्निमें ईंधन। जिस प्रकार धूलिसे लिप्त शरीरवाला मनुष्य जलसे निर्मल हो जाता है उसी प्रकार कर्मरूप धूलिसे लिप्त आत्मा उपवास रूपी जलसे निर्मल हो जाती है। जिस प्रकार अग्निमें तपाया हुआ लोहा सब ओरसे मैलको छोड देता है उसी प्रकार व्रतोपवास रूपी जलसे आत्मा सब ओरसे कर्मरूपी मैलको छोड देता है। जिस प्रकार नवीन जलका आगमन रुक जानेपर सूर्य तालाबको शुष्क कर देता है उसी प्रकार इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला मनुष्य समस्त पापोंको शुष्क कर देता है। यह बात समस्त शास्त्रोंमें सुनी जाती है कि उपवाससे बढकर और दूसरा तप नहीं है। पापोंके क्षयका कारण होनेसे उपवास परम तप है। देव गन्धर्व यक्ष पिशाच नागेन्द्र और राक्षस-सभी लोग व्रतोपवासके प्रभावसे तत्काल वशमें हो जाते हैं। विद्या मन्त्र औषधि योग तथा अन्य सभी प्रकारके लोग

उपवाससे वशीभूत हो जाते हैं। यह संक्षेपमें हमने आपलोगोंको उपवासकी कुछ विधि और माहात्म्य बतलाया है।

मुनिराजके उक्त वचन सुनकर कन्याओंके हृदय संतापसे भर गये। तदनन्तर उन कन्याओंने उन्हीं मुनिराजसे पंचमीके उपवासकी विधि पूछी, कन्याओंके वचन सुनकर योगिराज पुनः कहने लगे– जिनेन्द्र भगवानने कृष्ण और शुक्ल भेदसे पंचमी दो प्रकारकी कही है। कृष्ण पक्षमें जो पंचमी आती है वह कृष्ण पंचमी कहलाती है। भव्यजीव हर्षित चित्त होकर इस पंचमीके दिन, पांच वर्ष पांच मास तक उपवास करते हैं। इस कृष्ण पंचमीके माहात्म्यसे जिनशासनकी भावना रखनेवाला जीव निश्चित रूपसे समाधिको प्राप्त होता है। इस पंचमीके प्रभावसे भव्यजीव संसारमें दो तीन भव भ्रमण कर निश्चय रूपसे सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। जिन भक्तिमें तत्पर तथा विशुद्ध हृदयका धारक जो पुरुष एक जन्ममें समाधिपूर्वक मरण करता है वह क्रोध, मान रूपी मकरियोंसे भरे हुए तथा माया और लोभरूपी तरङ्गोंसे युक्त इस संसाररूपी समुद्रमें सात आठ भवसे अधिक भ्रमण नहीं करता। जैसा कि आगममें कहा गया है—

एकम्हि भवग्गहणे समाहिमरणेण कुणइ जो कालं।
ण हु सो हिंडइ बहुसो सत्तट्ठ भवे पमात्तूण ॥

अर्थात् जो एक भवमें समाधिमरणसे पर्याय छोड़ता है वह फिर सात आठ भवको छोड़कर अधिक भवोंमें परिभ्रमण नहीं करता।

यह प्रथम कृष्ण पञ्चमी श्रीपञ्चमी कहलाती है उसके उपवासकी विधि पूर्वोक्त प्रकार है। अब दूसरी शुक्ल पञ्चमी है उस दिन भी भव्य समूह उपवास ग्रहण करते हैं। इस व्रतकी विधि भी पूर्वव्रतकी तरह पांच वर्ष और पांच माहमें पूर्ण होती–

है। व्रत पूर्ण होनेपर पश्चात् पुष्प, धूप, अक्षत आदिके द्वारा जिन भगवानकी विशिष्ट पूजा करनी चाहिये। घण्टा चंदेवा धन्नूप आदिसे जिनमन्दिरको अलंकृत करना चाहिये। पञ्चमी व्रतका माहात्म्य प्रकट करनेवाली पांच पुस्तकें लिखाकर वितरण करना चाहिये। मुनियोंके लिये भक्तिपूर्वक आहार तथा औषध आदि दान देना चाहिये। आर्यिकाओंके लिये वस्त्र प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक पञ्चमी व्रत करनेके प्रभावसे भव्य जीव गर्भादि पञ्चकल्याणक प्राप्त कर, अर्थात् तीर्थङ्कर होकर अविनाशी निर्वाण पदको प्राप्त करता है।

मुनिराजके वचन सुनकर उन पुत्रियोंने उन्हें नमस्कार तथा जिन मतमें आसक्त होकर पञ्चमी व्रतकी विधि ग्रहण की। इस प्रकार पञ्चमी व्रतको ग्रहण कर जिनका चित्त सन्तोषसे भर रहा है सभी वे कन्यायें मुनिराजके चरणकमलोंको नमस्कार कर अपने घर गयीं। वे चारों कन्यायें घर जाकर अपने महलकी छत पर बैठी हुई थीं कि इतनेमें उनके मस्तक पर अचानक ही कड़कती हुई बिजली गिरी जिससे वे चारों मरकर वहां और धर्मके लाभ से उसी क्षण सौधर्म स्वर्गमें देवियां हुईं। इसप्रकार वह क्रिया करके ऐसे ही वे त्रियोंके गीतसे सुशोभित स्वर्गमें देवपदको प्राप्त होगयीं। वहां पांच पल्य तक देवोंके साथ सुख भोगकर वहां चारों ही देवियां मरणको प्राप्त हुयीं और स्वर्गसे च्युत होकर हे राजन्! इस समय रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न हुई वसुन्धरा आदि तुम्हारी पुत्रियां हुई हैं। ये सभी हर्षसे सहित हैं।

इसप्रकार रूप्यकुम्भ मुनिराजके पास अपने तथा अपने पुत्र पुत्रियोंके भवान्तर सुनकर राजा अशोक और रोहिणी बहुत ही सन्तोषको प्राप्त हुए। अन्य दूसरे नर नारी भी उस समय उनके भवान्तर सुनकर कोई सम्यक्त्वको प्राप्त हुए, किन्हीने श्रावकके व्रत ग्रहण किये और कोई उत्तम मुनिव्रतको प्राप्त हुए।

इसी बीचमें प्रसन्नचित्त तथा आश्चर्यसे जिसका चित्त व्याप्त हुआ है ऐसी वसुमती कन्या मुनिराजको प्रणाम कर इसप्रकारके वचन बोली-हे नाथ! हे स्वामी! मौनव्रत और उसका उद्यापन किसप्रकार किया जाता है सो लिये इस समय यह और भी कहिये। धर्मकी वृद्धि करनेवाले उसके वचन सुनकर कृपा-कुशल मुनिराज उससे कहने लगे। जिस समय वे कह रहे थे उस समय वसुमति आदरसे हाथ जोडकर अपने ललाटसे लगाये हुई थी।

भोजनके समय जब तक पूरा भोजन न होजाय तब तक कुछ नहीं बोलना चाहिये। हुंकार संकेत आदि दोषोंसे रहित उत्तम मौनव्रत करना चाहिये। हे पुत्रि! इस प्रकार इच्छाओंके निरोध पूर्वक बारह वर्ष तक मौनव्रत करनेसे यह व्रत पूर्ण होता है। व्रत पूर्ण होनेपर उसका उद्यापन किया जाता है। अब मैं संक्षेपमें उसके उद्यापनकी विधि कहता हूं। पुष्प धूप आदि सामग्रीसे श्री वर्धमान स्वामीकी महामहोत्सवके साथ पूजा करना चाहिये। भक्तिमें तत्पर होकर कर्मोंका क्षय करनेके लिये समस्त संघको वस्त्रादि प्रदान करना चाहिये। और जैन मन्दिरमें उच्चस्वर करने वाला उत्तम घंटा अनेक चमरोंके साथ देना चाहिये। मौनव्रतके करनेसे यह जीव मरनेके बाद स्वर्गमें मनोहर शब्द करनेवाला तथा नाना भोगोंसे सहित देव होता है। तदनन्तर स्वर्गके सुख भोगकर पृथ्वी पर उत्पन्न होता है और चक्रवर्ती आदिके भोग भोगता है। इस प्रकार चिरकाल तक पृथिवी सम्बन्धी मनोवाञ्छित भोग भोग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करता है और कर्मबन्धनसे रहित होकर सिद्धि पदको प्राप्त होता है, जिसके यशसे समस्त दिशाएं व्याप्त होरही हैं और जो मन्द गतिसे गमन करती है ऐसी हे पुत्रि! अब मैं तेरे लिये मौन व्रतका प्रत्यक्ष फल कहता हूं तू सुन-

मौन व्रतके प्रभावसे मनुष्योंके वचन कानोंको सुख पहुंचाने-वाले, मनको हरण करनेवाले, लोगोंके विश्वासके कारण, प्रमाणभूत

तथा सबके प्रमाण करने योग्य होते हैं। इन्द्रादि राजा समान उसकी आज्ञाको सब लोग अपने मस्तक पर धारण करते हैं-यह मौन व्रतका ही उत्तम फल है। इस लोकमें जिसने चिरकाल तक मौनव्रत धारण किया है वह जो कुछ भी करता है वह सब भय ताप तथा विपत्ति नष्ट करनेवाला होता है। मौनव्रतके प्रभावसे मनुष्योंका मुखकमल मधुर अक्षरोंसे सहित, मनोहर और नाना प्रकारके अर्थोंसे सुशोभित भाषण करनेवाला होता है। चिरकाल तक मौनव्रत करनेसे समस्त ऐहिक फल देनेवाला कठिनसे कठिन विद्यायें भी सिद्ध [illegible] जाती हैं। जो कार्य पृथिवी पर असाध्य अथवा अत्यंत कष्टका कारण होता है वह कार्य भी मौनव्रत करनेवालेके वचनसे सिद्ध हो जाता है।

मुनिराज कर्मोंका क्षय करनेके लिये जो ध्यान करते हैं वह भी मौनसे ही करते हैं इसलिये मौन समस्त अर्थोंको सिद्ध करनेवाला है। मौन व्रतको धारण करनेवाला कोई पुरुष अणुव्रत गुणव्रत और शिक्षाव्रतसे सहित होता हुआ सिद्ध भगवानका भक्त हो क्रमसे मोक्षको भी प्राप्त करता है।

इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर और उन्हें मन वचन कायसे नमस्कार कर कन्या वसुमतीने उनके समीप मौनव्रत ग्रहण किया। रूप कुंभ मुनिराजके पास पूर्वभव तथा धर्मका स्वरूप सुनकर अशोक आदिने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और फिर हस्तिनागपुरकी ओर गमन किया। अशोक, रोहिणी तथा उनके पुत्र पुत्रियां सभी अपने भवनमें प्रवेश कर विपुल भोगोंको भोगते हुए प्रसन्न चित्तसे रहने लगे।

एक बार वर्षवृद्धिके दिन राजा अशोक स्नान कर महादेवी रोहिणीके साथ हर्ष पूर्वक सिंहासन पर बैठे थे। समीपमें बैठी हुई रोहिणीने अपने पति अशोकके कानके पास कोई पूरी

आमाताला एक सफेद बाल देखा। देखा ही नहीं उसे अपने हाथसे निकाल कर अशोकके कमल तुल्य हाथ पर रख दिया। त्योंही राजाने महादेवीके द्वारा अर्पित सफेद बाल देखा त्योंही वे भोग और शरीरकी निन्दा करते हुए वैराग्यका चिन्तवन करने लगे। इसी बीचमें वनपालने आकर राजासे कहा—हे महाराज! उद्यानमें श्री वासुपूज्य जिनराज पधारे हैं। वनपालके वचन सुनकर राजाने शीघ्र ही सिंहासनसे उठकर और उस दिशामें सात पग जाकर श्री वासुपूज्य स्वामीको परोक्ष नमस्कार किया। वनपालको पुरस्कार देकर सम्मानित किया, और आनन्द भेरी बजवाकर नगरवासी लोगोंको इसकी खबर दी। तदनन्तर कुमारके लिये राज्य लक्ष्मी सौंपी और स्वयं महाविभूतिसे सम्पन्न होकर सबके साथ वनके प्रति चले। वहां उन्होंने श्री वासुपूज्य स्वामीकी भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणाएं देकर नमस्कार किया और फिर उन्हींके समीप जिन दीक्षा धारण कर ली। अपरिमित प्रभावके धारण करनेवाले अशोक योगिराज इन्द्रोंके द्वारा नमस्कृत श्री वासुपूज्य स्वामीके गणधर हो गये। तदनन्तर बहुत समय तक कठिन तप तपकर अन्तमें कर्मोंका क्षय कर उत्तम निर्वाण नगरको प्राप्त हुए।

महादेवी रोहिणीने भी समस्त परिग्रह छोड़कर और श्री वासुपूज्य भगवानको नमस्कार कर सुमति नामक गणिनीके पास तप धारण कर लिया। रोहिणीने सामान्य स्त्रियोंको दुष्कर नाना प्रकारका तप कर आयुके अन्तमें कर्मोंकी हानि करनेके लिये सल्लेखनाकी विधि धारण की, जिससे स्त्री पर्यायका छेदकर वह समाधिमरणके प्रभावसे अच्युत स्वर्गमें दिव्य लक्ष्मीको धारण करनेवाला देव हुई। देखो, एक ही उपवाससे रोहिणीने सामान्य जनोंको दुष्प्राप्य सुखकी परम्परा प्राप्त की। धर्मका माहात्म्य अचिन्त्य है।



अशोकरोहिणी व्रतके उद्यापनकी विधि।

जिस किसीको अपने व्रतका उद्यापन करना हो वह विधिपूर्वक शक्ति अनुसार सुन्दर सामग्री एकत्रित करे और साधर्मीजनोंको द्रव्य ले जानेके लिये अपने घर पर आमंत्रित करे। साधर्मीजन भी गाजेबाजेके साथ उद्यापन करानेवालेके घर जावे और वहां भजन आदि गावे। विधि करानेवाला आचार्य घरकी किसी पवित्र जगहमें चावलोंका स्वस्तिक बनाकर उस पर एक घट रक्खे। घट रखनेके पहले उसमें सवा रुपया या फल पुष्पादि डालकर सूत्र नारियल और पचरंगा सूतसे उसे वेष्टित कर ले। उस पर आम या अशोकके हरित पत्र तथा दूबा और पुष्पमाला वगैरह मांगलिक पदार्थ भी लगा देवे। घटके पास ही एक घृतका चौमुखी दीपक जलावे और फिर मंगलाष्टक या मंगल पंचक पढता हुआ उसी घट पर पुष्प डाले।

यह सब क्रिया हो चुकने पर साधर्मीजन द्रव्य लेकर गाजेबाजेके साथ मन्दिरमें जावें, उन्हींके साथ इकट्ठी हुई स्त्रियाँ अथवा उद्यापन करानेवाले महाशय उस घटको मन्दिरजीमें ले जावे। मन्दिरमें वेदिकाके सामने अथवा किसी विस्तृत स्थानमें चंदोवा बांधकर तख्त पर सुफेद अथवा शुद्ध रंगमें रंगे हुए चावलोंका मांडना बनावे।

सबसे पहले एक छोटा कमल खींचकर ॐ लिखे फिर अष्टदल कमल बनावें उसके बाद पांच दलका एक कमल बनावे। कमलके दलोंको विभिन्न रंगोंसे सुन्दरताके साथ भरकर अलंकृत करे। घासे लाया हुआ वस्त्र इसी माडनेके एक कोण पर चावलोंका स्वस्तिक बनाकर रख देना चाहिये। मण्डलके बीचमें ऊँची चौकी या ठोना रखकर उस पर सिंहासन सहित श्री वासुपूज्यस्वामीकी प्रतिमा विराजमान करें। यदि मन्दिरमें श्री वासुपूज्यस्वामीका प्रतिमा विद्यमान न हो तो अन्य तीर्थंकरकी प्रतिमा भी विराजमान का जा सकती है। पूजाकी समस्त सामग्री शुद्धतापूर्वक तैयार कर माडनेके सामने दूसरे तख्त पर जमा लेना चाहिये।

विधिके प्रारम्भमें अपनी अपनी रुचिके अनुसार पंचामृत या साधारण जलसे श्री वासुपूज्यस्वामीकी प्रतिमाका अभिषेक करना चाहिये, फिर नित्य पूजाका स्थापन कर अष्टदल कमल पूजा करें। अष्टदल कमलका पूजा अष्टकर्म रहित सिद्ध भगवानकी पूजाके रूपमें की जाती है। उसके बाद श्री वासुपूज्यस्वामीके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण कल्याणककी पृथक् पृथक् पूजाएँ जैसी कि उद्यापनमें लिखा है, करना चाहिये। पूर्णार्घ अथवा जयमालमें नारियलका गोला चढाना चाहिये। प्रत्येक कल्याणकी पूजाके बाद ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनाय नमः इत्यादि मन्त्रोंकी एक ... [illegible]

अशोकरोहिणी व्रतके उद्यापनकी विधि।

जिस स्त्रीको अपने व्रतका उद्यापन करना हो वह विधिपूर्वक
शक्ति अनुसार सुन्दर सामग्री एकत्रित करे और साधर्मीजनोंको
द्रव्य ले जानेके लिये अपने घर पर आमंत्रित करे। साधर्मीजन
भी गाजेबाजेके साथ उद्यापन करानेवालेके घर जावें और वहां
भजन आदि गावें। विधि करानेवाला आचार्य घरकी किसी पवित्र
जगहमें चावलोंका स्वस्तिक बनाकर उस पर एक घट रक्खे।
घट रखनेके पहले उसमें तांबा रुपया या फल पुष्पादि डालकर
सूत नारियल और पचरंगा सूतसे उसे वेष्टित कर दे। उस पर
आम या अशोकके हरित पत्र तथा दूर्वा और पुष्पमाला अष्ट
मांगलिक पदार्थ भी लगा देवे। घटके पास ही एक घृतका
चौमुखी दीपक जलावे और फिर मंगलाष्टक या मंगल पंचक
पढ़ता हुआ उसी घट पर पुष्प डाले।

यह सब क्रिया हो चुकने पर साधर्मीजन द्रव्य लेकर
गाजेबाजेके साथ मन्दिरमें जावें, उन्हींके साथ इकट्ठी हुई स्त्रियां
अथवा उद्यापन करानेवाले महाशय उस घटको मन्दिरजीमें ले
जावें। मन्दिरमें वेदिकाके सामने अथवा किसी विस्तृत स्थानमें
चौका नापकर तख्त पर सुआ अथवा शुद्ध रंगोंमें रंगे हुए
चावलोंका मांडना बनावे।

जलधारा देना चाहिये। फिर शान्ति विसर्जन प्रदक्षिणा स्तुति आदि क्रियाएं करना चाहिये। उद्यापनके हर्षमें आहार औषधि-ज्ञान और अभय इन चार दानोंमें शक्ति अनुसार द्रव्य निकालना चाहिये।

इसके बाद यदि आगे व्रत करनेकी शक्ति न हो तो हाथमें एक नारियल ले प्रतिमाजीके समक्ष खड़ा होकर नौवार णमोकार मन्त्र पढ़े और विनीत भावसे कहे कि—"हे भगवन्! शक्ति अनुसार यह महान व्रत मैंने समय तक धारण कर उद्यापन किया, अब शक्तिके अभावसे आगे धारण करनेमें असमर्थ हूं अतः व्रत भाण्डारमें रखिये। इतना कहकर वेदी पर नारियल चढ़ाता हुआ नमस्कार करे। रोहिणी व्रतकी कथा पढ़कर सबको सुनावे और उसीका माहात्म्य सबको बतलावे जिससे अन्य लोगोंकी रुचि भी इस व्रतके धारण करनेकी ओर बढ़े। व्रत धारी पुरुषके साधर्मी भइयोंमें वितरण करे।

—पन्नालाल जैन 'वसंत', साहित्याचार्य-सागर।



जैन व्रतकथासंग्रह

स्व० ब्र० दीपचन्द्रजी वर्णी कृत इस संग्रहमें रत्नत्रय, दशलक्षण, षोडशकारण, श्रुतस्कंध, त्रिलोकतीज, मुकुटसप्तमी, पल्य (अक्षय) दशमी, श्रवण द्वादशी, रोहिणी, आकाश पंचमी, कोकिला पंचमी, चन्दन षष्ठी, निर्दोष सप्तमी, निःशल्य अष्टमी, सुगंधदशमी, जिनरात्रि, जिनगुण संपत्ति, मेघमाला, लब्धि विधान, मौन एकादशी, गरुड पंचमी, द्वादशी, अनंत, अक्षयनिधि, पुष्पांजलि, बारहसौ चौंतीस, औषधिदान, परपन होम व कल्याणक आदि व्रत इस तरह ४२ व्रतोंकी कथायें दी गई हैं। तथा १५४ व्रत ग्रंथ व्रतोंकी सूची भी दे दी गई है। पृ० १५६ मूल्य १।।=) आना मात्र है।

मैनेजर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत।

बृहत् कथाकोष



इस कथाकोषमें राजकुमार, सोमशर्मा, विष्णुदत्त विद्युच्चोर, यशोरथ, जयविजय राजी, चलना, श्रेणिक, सोमशर्मा व वारिषेण, विष्णुकुमार, वज्रकुमार, विनयधर, बुद्धिमती, प्रियवीरा, सोमशर्मा, वीरभद्र, अभिनन्दन मुनि, मानविनय, ज्ञानाचरण, गुरुनिन्हव, व्यंजनहीन पाठ, अर्थहीन पाठ, उभयशुद्धि, नागदत्त, सुमित्र, वासुदेव, अविनेत्री हँस, हरिषेण, विष्णु व प्रद्युम्न, चौलुक, चौपर, सरसों ध्यान, द्यूताध्ययन, जूआ, मनुष्य पर्याय, चन्द्रवेध, कछुआ, समुद्रदत्त वसुमित्र, जिनदत्त, लहुच, पद्मरथ, ब्रह्मदत्त, जिनदास, रुद्रदत्त और श्रेणिक इस प्रकार ५५ जैन कथाओंका संग्रह है जो संस्कृतमें प० राजकुमार शास्त्री गाल्हणाचार्य कृत सरल हिन्दी भाषामें है। (पृ० २३२ पक्की जिल्द मू० २॥)

मैनेजर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय—सूरत।



श्रीरोहिणीव्रतोद्यापनम् ।

(रचयिता — पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य)

वृषभादिमहावीरान्तान् जिनानानम्य भक्तितः ।
उद्यापनमहं वक्ष्ये रोहिणीव्रतकस्य हि ॥ १ ॥
आदौ श्रेयोऽष्टकं पाठ्यं पुष्पक्षेपणमद्भुतम् ।
कार्यं श्रीवासुपूज्यस्य जिनस्याभिषवस्ततः ॥ २ ॥
पञ्चकल्याणिकी पूजा विधेया पुनरस्य च ।
शान्तिर्विसर्जनं कार्यं स्तुतिश्चापि परिश्रम ॥ ३ ॥
चतुर्विधं महादानं देयं भक्तिपुरस्सरम् ।
नमः श्रीवासुपूज्याय जिनाय परमात्मने ॥ ४ ॥
इति मन्त्रजपः कार्यः स्थिरीभूतेन चेतसा ।
नानोपकरणाद्यैश्च विधातव्या प्रभावना ॥ ५ ॥

श्रेयोऽष्टकम् ।

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्रमुकुटप्रद्योतरत्नप्रभा,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः ।
ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ १ ॥
नाभेयादिजिनाः प्रशस्तवदनाः ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ।
ये विष्णुप्रतिविष्णुलाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशति-
स्त्रैलोक्याभयदास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ २ ॥
ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिं गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशलाश्चाष्टौ वियच्चारिणः ।
पञ्चज्ञानधराश्च येऽपि विपुला ये बुद्धिऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ३ ॥
ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः –
जम्बूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षाररूप्याद्रिषु ।
इक्ष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ४ ॥
कैलासो वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरी,
चम्पा वा वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलोऽर्हताम् ।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरो नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ५ ॥

सत्पूज्या जिनचक्रवर्तिबलभृद्भोगीन्द्रकृष्णादयो,
धर्मादेव दिगङ्गनाङ्गविलसच्छश्वद्यशश्चन्दना ।
तद्धीना नरकादियोनिषु नरा दुःखं सहन्ते ध्रुवं,
स स्वर्गसुखरामणीयकपदं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ६ ॥
सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः ।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥ ७ ॥
आहारा मुनिवाक्यादवद्दहना दक्षिणका [illegible]
नै मङ्गलापुरण प्रगुणगमगमा म [illegible]
मोम मोऽवतरणानाद्रिनिति च विदु [illegible]
त्रिज्ञानाः जिनकल्पयुक्तितपसः [illegible] ॥ ९ ॥
इत्थं श्रीजिनमङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्करं
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणामुषः
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥ १० ॥
([illegible])

निःसीमसौख्यसमूहमण्डित योगखण्डित रतिवराः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते श्रीवीरनाथजिनेश्वराः ॥ १ ॥
सद्ध्यान तीक्ष्ण कृपाणधारा निहतकर्मकदम्बकाः —
देवेन्द्रवृन्द नरेन्द्रवन्द्या प्राप्तसुखनिकुरम्बकाः ।
योगीन्द्रयोगनिरूपणीया प्राप्तबोधकलापकाः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते सिद्धाः सदा सुखदायकाः ॥ २ ॥
आचारपञ्चक चरण चारण चुञ्चवः समताधराः,
नाना तपोभरहेति हापित कर्मकाः सुखिताखिलाः ।
गुप्तित्रयी परिशीलनादि विभूषिता वदतांवराः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते श्रीसूरयोऽर्जित शम्भराः ॥ ३ ॥
द्रव्यार्थभेदविभिन्नश्रुतभरपूर्णतत्त्व निभालिनो,
दुर्योग योग विरोध दक्षाः सकल वरगुण शालिनः ।
कर्तव्यदेशनतत्परा विज्ञानगौरवशालिनः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते गुरुदेवदीधिति मालिनः ॥ ४ ॥
संयमसमित्यावश्यका परिहाणि गुप्ति विभूषिताः,
पञ्चाक्षदान्ति समुद्यता समतासुधा परिभूषिताः ।
भूपृष्ठविष्टरशायिनो विविधर्द्धिवृन्द विभूषिताः,
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते मुनयः सदा शमभूषिताः ॥ ५ ॥

(मङ्गल पाठ पढ़ चुकनेके बाद श्री वासुपूज्य जिनका अभिषेक करे। अभिषेकके बाद ॐ जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु आदि पढ़कर नित्य पूजाके अनुसार स्थापना करना चाहिये। स्थापनाके बाद अष्टदल कमल पूजा करना चाहिये। बीचमें ॐ लिखकर आठों दिशाओंमें आठ पांखुरी बनाना चाहिये।)

अष्टदलकमलपूजा ।

अनुष्टुप् छन्द ।

अर्हदादिपदाराध्यमोंकारं विन्दुसंयुतम् ।
कामदं मोक्षदं वन्दे कर्मारातिक्षयप्रदम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टकर्मरहिताय पञ्चपरमेष्ठिभ्यः अर्घ्यपदार्थं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञानावरणमत्यन्तं ध्यानानलविशोषणम् ।
वन्दे सिद्धं स्वयं सिद्धं कर्मशत्रुविशोषणम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणकर्मरहिताय सिद्धाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दर्शनावरणमत्यन्तमविज्ञान दहत्यम् ।
वन्दे सिद्धं चमत्कारं तं महद्गुणिदर्शनम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणकर्मरहिताय सिद्धाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वेदबाधामहाप्यया व्याबाधगुणम् ।
वन्दे सिद्धं स्वभावसिद्धं श्रीमदर्हम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं वेदकर्मरहिताय सिद्धाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोहभूपालभूपालमहसा महितम् ।
वन्दे मुक्तं गुणैर्युक्तं सम्यक्त्वादिगुणान्वितम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मरहिताय सिद्धाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अवगाहगुणोपेतमायुःकर्मविनाशनात् ।
वन्दे शुद्धं महात्मानं सम्यग्दर्शनात् ॥

ॐ ह्रीं आयुःकर्मरहिताय सिद्धाय अर्घ्यं निर्व

नामकर्मविदारेण सूक्ष्मत्वगुणशालिनम् ।
वन्दे मुक्ति महीकान्तं लोकत्रयनिभालिनम् ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं नामकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

गोत्रगोत्रविदारेण प्राप्तागुरुलघुत्वकम् ।
वन्दे सिद्धिवधूकान्तं सदा मोहनकारकम् ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं गोत्रकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अन्तराय विनाशेन प्राप्तानन्त महाबलम् ।
वन्दे लोकशिखारूढ लोकातीत सुनिश्चलम् ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसके बाद नीचे लिखी हुई पूजा करना चाहिए ।)

श्री वासुपूज्य जिन गर्भकल्याणक पूजा ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः ।

हे कर्मारिकृपाण मोहतिमिर प्रध्वंसवज्र पर,
हे सज्ज्ञानविभाविभासितजगत् हे मोक्षलक्ष्मीपते ।
हे श्रीमत् जगतीपते जिनपते श्री वासुपूज्यो सदा,
मागत्यात्र महोत्सवे नततमानस्मान्सनाथान् कुरु ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्रावतरावतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

वसन्ततिलकाछन्द ।

गर्भागम त्रिदिवनाथ समुद्र या,
दन्य नर द्रनिषयैर्जगतीरति तम् ।
मागोधयो गजिसुता शचिना मसुत्ये,
नीरैर्यजे जिनपति खलु वासुपूज्यम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

देवै द्रुमन्दपरिवन्दितपादपद्म,
कर्माटवी शिव कुठारमपरासिद्धम् ।
सद्य दनैरलिकदम्बकमोददक्षै,
सपूजयामि जिनप किल वासुपूज्यम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

येनाश्रिता किल मही ललिता बभूव,
यद्वे द्रुमोचितसुरत्नचये मम तात ।
त वासुपूज्यजिनप जिनपप्रधान–
मर्चामि तण्डुलचयैरमृताशुतुल्यै ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वर्गावतारसमये जननी यदीया,
नाकाधिनाथनिचयैर्महिता बभूव

रत्नोच्चयैरलिकदम्बकचुम्बितैस्तैः,
पुष्पैर्यजामि जिनप वसुपूज्यपुत्रम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाण-विनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आनन्दमन्दिरमनिन्द्यममन्दवन्द्य,
दैत्यारिवृन्दपरिवन्दितपादपद्मम् ।
श्रीवासुपूज्यजिनप दिनयप्रताप,
नैवेद्यकैर्ननु यजे रसनाप्रियैश्च ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सज्ज्ञानदीपकनिरस्तमनोऽन्धकार,
निरस्तमोहमहिमानमवेयमानम् ।
सम्पूजयामि रुचिरैर्मणिदीपपुञ्जैः,
पूज्यं सुरैर्जिनपतिं वसुपूज्यजातम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सद्ध्याननीक्ष्ण करवाल निकृत्तकर्म-
शत्रु समस्तजनमित्रमनन्यदीनम् ।
श्रीवासुपूज्यजिननाथमहं यजामि,
धूपैः सुगन्धितदिशैर्मुदितालिवृन्दैः ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म-विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

स्नामन्द्रैस्सुरशिरोभितलोकशीर्षे,
ज्ञानावलीवपतितु नृपय विशेषम् ।
वासाद्युगलजूंस्वद्धरांवं–
रक्षांसि कल्पकल्पैर्जिनवासुपूज्यम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं गर्भावतरणकल्याणमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्र
…लम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सश्रीकचन्दनमदक्षतपुष्पपुञ्ज,
नैवेद्यदीपवरधूपफलार्घकेन ।
अघप यदि त्वदद् दिविने दश दे,
श्रीवासुपूज्यजिनप किल पूजयामि ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद
…र्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आर्याछन्दः ।

आषाढकृष्णपक्षे षष्ठीदिवसे जयावतीदेव्याः ।
गर्भं कृत प्रभव दिविजैर्विहितोत्सव मत्तया ॥ ११

जयमाला ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः ।

यद्गर्भस्य महोत्सवं सुरवरैराकाशमध्यादिते
नानावर्णधरैर्विचित्रमणिभिः सह दिव्यः कृतः ।
शुभ्रचन्द्रधरैस्तदीयसुगुणे रजे यथा लाञ्छितः,
तं वन्दे वसुपूज्यराजतनयं सत्यं सदा मोक्षदम् ॥१३॥

चौपाई (१६ मात्रा) ।

चम्पापुर सन्निधवरनगरे सर्वदिशाशोभितवर निकरे ।
वसुपूज्यनृपगृहसम्भूत त्रिभुवनवन्दित सुन्दरदेह ॥ १४ ॥
जयावती माता किल तस्या त्रिजगतीकृतचरणनमस्या ।
आषाढस्य श्यामलपक्षे षष्ठीदिवसे शुभनक्षत्रे ॥ १५ ॥
यामिन्यां किल कृष्णे मासे ज्योतिषचक्रविराजितरागे ।
मञ्जुलरवपद्धस्थाकाशे रम्यकौमुदीनिचयविकासे ॥ १६ ॥
पश्यति स्म रात्रौ सुस्वप्नान् मञ्जुलशुण्डद्वययानम् ।
वृषभ धवल शुभमृगराजं सुन्दरनन्दनवालिमाजम् ॥ १७ ॥
कमलाकलशस्नपन रम्य मालायुगल षट्पदगन्धम् ।
दीप्त्यवृतिं रजनीपतिबिम्ब सुन्दरमीनयुगं हतबिम्बम् ॥ १८ ॥
कनककलशयुगल कासारं कमलभ्रान्तिमकरालाकारम् ।
कल्लोलाकुलित नदनाथं सिंहपीठमुचितत्वमनाथम् ॥ १९ ॥

अमरविमानं ललितमणीय फणिपतिभवन ललितकमनीयम् ।
रत्नराशिमनल विलसन्त स्वप्नसमूहमिम निरमन्तम् ॥ २० ॥
सद्दर्शं निद्रारहिता स्तुमङ्गीतिश्रवणाधि निरता ।
प्रत्यूषे पतिनिकट याता पत्या कृतसत्कार प्राप्ता ॥ २१ ॥
पृष्टवती विनयन युता स स्वप्नसमूहपरिणाम महो तम् ।
श्रुत्वावधिबोधन नृपस्त परिज्ञाय स्वप्नावलि फलितम् ॥ २ ॥
अथ प्रिय तव गर्भे प्राप्तस्तीर्थंकर गुणलक्षणमाप्त ।
तस्य जिनस्य कथयन्ति गुणगौरवमस्यैव वर्द्धित ॥ २३ ॥
तत्काल सुरलोकात्याता इन्द्रनिदेशवशय समाप्ता ।
श्रीमुख्या दिक्कन्यानिकरनिता सेवा कौशलभाग्विलसिता ॥२४॥
जिनजननीं सेवितुमायाता भूपालय भवन समाप्ता ।
असेवन्त विविध नृपनारीं दुर्गुणगणविनिपातनमारीम् ॥ २५ ॥
चतुर्णिकायामरपतिनिचया पत्तनाकम्पित सुन्दर निचया ।
गर्भोत्सव विधातु प्राप्ताश्चक्रपतिभवन सपादा ॥ २६ ॥
वस्त्राभरणं विविधप्रकारै वरदुकूलैर्धृतमाभारे ।
जिनजननीं निजजनक भक्त्या समर्चितु शुभमाल्यादिवस्त्रया ॥
गीत नृत्य नव रसकलित चक्रे सुरौघय परिकलितम् ।
यक्षपती रत्नानि ववर्ष मर्त्यमनस्तनाति जहर्ष ॥ २८ ॥
कोऽप्यधनो न च भुवि तदानीं कोऽपि महारुग्णो न तदानीम् ।
स्वयभूत नहि कोऽपि वियुक्त सवयूत नहि कोऽप्युन्मत्त. ॥२९॥

सर्वे धर्मपुता विलसन्ति स्वेष्टजनेन युता विहरन्ति ।
कृत्वा गर्भमहोत्सवममरा व्रजन्ति स्म स्वर्गं सुखनिकराः ॥३०॥
साक्षाद्धेव रसायनमेतं गर्भात्मवमानन्दप्रमेतम् ।
ये पश्यन्ति जना परम्भक्त्या निस्मृतनयननिमेषप्रमकरया ॥३१॥
धन्यतरा भुवि ते किल सन्ति परजन्म यपि तथा भवन्ति ।
पश्चमकालभवा वयमत्र सीदामो गुणराशि पवित्र ! ॥ ३२ ॥
छिन्नपक्षयुगपक्षिगणा इव मग्नपादयुगला॰ पुरुषा इव ।
गमनागमनयुक्तिविहीना महाजनोचितमार्गविहीना ॥ ३३ ॥
किन्तु चेतसा ध्यानं तस्य कुर्मः सम्प्रति गर्भमहस्य ।
[illegible] मन्तोऽपि वय, महितेन भवतु दुःखानि किल तेन ॥३४॥

हिन्दी भाषा छन्द (२४ मात्रा)

वासुपूज्य जिनराज महागुणवारिधिवासिन्,
ध्यानकृपाणनिकृत्तकर्मभर हे गुणरासिन् ।
गर्भत्रासज दुःख मम दूरीभूयात,
त्वत्प्रसादतो मुक्तिरमा च निकटीभूयात ॥३५॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीवासुपूज्यजिन जन्मकल्याणकपूजा

शार्दूलविक्रीडितछन्द ।

दृष्ट्वा येन भवस्य दु खसरणिं राज्यादिकं प्रोज्झितं,
बाल्येनैव पराजितो हरिसुतो यन क्षितौ तेजसा ।
य ध्यायन्ति मनीषिण प्रतिदिनं मोक्षस्य सम्प्राप्तये,
तं पूज्यं वसुपूज्य राज्यतनयं भक्त्या भजे सन्ततम् ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ ठ ठ ।

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डित श्री वासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

द्रुतविलम्बितछन्द ।

हतविधिं सुनिधिं मुनिविं भजे जिनपतिं [illegible]
कनककुम्भ भृतेन सुधारिणा [illegible] ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्री[illegible] जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

विहत जन्मजरामृति पीटत सुरघयोऽच्छ पीठनमापितम् ।
अक्षिमयत यजेऽक्षतराशिना सुरनुत वसुपूज्यसुत सदा ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं प ञ्चकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षय पदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वविमयेन पराजितम थ प्रकटितोत्तममोक्षपथ शुभम् ।
सरलतान्तचयेन यजे जिन सुरनुत वसुपूज्यसुत सदा ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं प ञ्चकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय काम-बाणविनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

त्रिबुधवन्दितपादसरोरुह सुमतिशातितपापमहोदय ।
चरुभरैर्यजे चरणौ जिन सुरनुत वसुपूज्यसुत सदा ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं प ञ्चकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधा रोग-विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

तनुविभाविनिभासितदिक्चय हततमोऽखिललोकमय मुदा ।
रुचिरदीपैर्यजे गददावकं सुरनुत वसुपूज्यसुत सदा ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं प ञ्चकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

हुततमा भुवि यत तपोऽनले निखिलकर्मचया विमयोज्ज्वले ।
तमिह धूपचयेन यजे मुदा सुरनुत वसुपूज्यसुत सदा ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं प ञ्चकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म-विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

अखिलकर्मसमस्तचयाहता ननु तपो महसा भुवि यन ते ।
फलचयेन यजे विविधेन त सुरनुत वसुपूज्यसुत सदा ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

विमलदर्शनबोधविभासितं सकलवृत्तसुचित्तसमन्वितम् ।
परियजेऽर्घचयेन जिनोत्तमं सुगुणतं वसुपूज्यसुतं सदा ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

शार्दूलविक्रीडितम् ।

मासे रम्ये फाल्गुनाख्ये मनोज्ञे पक्षे कृष्णे भूतसद्धामिरामे ।
दर्शात्पूर्वं वासरे जन्मकल्याणामासौ सभ्यमालोकयेव ॥ ११॥
नीत्वा शीर्षे देवशैलस्य देवैः सिक्तोऽक्षुब्धक्षीरवाराशितोयैः ।
अर्घं धृत्वा हस्तयोरञ्जनार्थे भक्त्याहं तं वासुपूज्यं जिनेन्द्रम् ॥१२

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

मेरुतुङ्गे गिरिराजस्य शिखरे क्षीरोदधेर्गाहुत,
श्रम्भस्य द्रुकराकलापतलितेरभ्यभिरानन्दिता ।
जातं यं मुदिता सुरा अभिषिषिचुः संसिक्तवन्तं स्वयं,
तं वन्दे वसुपूज्यराजतनयं सनयं सदा सौख्यदम् ॥१३॥

चतुष्पदी (१६ मात्रा)

फाल्गुनकृष्णचतुर्दशिसारं स्वाक्षयश्रीकृतमङ्गलभारे ।
चम्पापा वसुपूज्यनृपस्य जयावतीदेवीमहितस्य ॥ १४ ॥

गृहेऽमवज्जिनजन्म प्रशस्त पापतापहरणं ऊनहरवम् ।
सिंहपीठकम्पनतो ज्ञातं निर्जरपतिना जिनपतिमाहम् ॥ १५ ॥
ज्योतिषगृहेऽभवद्धरिनादो भवनामर भवने शंखनाद् ।
व्यन्तरनिलये पटहप्रणाद् सुरालये घर घण्टानाद् ॥ १६ ॥
क्षण स्वभावाता अपि जाता सुखयुक्ता दूरीकृतबाधा ।
त्रिजगन्मध्ये क्षोमोभूत सकलच्यलोक परिपूत. ॥ १७ ॥
मतिश्रुतावधि बोधसुयुक्तो चिरोऽभवद्वृदु पापावलि मुक्त' ।
चतुर्विधामरनाथ समूहा दुरीकृतसकलप्रत्यूहा ॥ १८ ॥
निज निज शुभपरिवारोपेता' समागता वरभक्ति समेता. ।
समागतः प्रथम सुरराज स्वाधिष्ठानीकृत गजराज ॥ १९ ॥
पुलोमजान्तर्गेह गत्वा जिन मातनिकटस्थं मत्वा ।
कृत्रिमनिद्रावर्ती विधाय जिनजननीं जिनपतिमादाय ॥ २० ॥
नदिरामत्य पाणि युगमध्ये ददौ निलिम्पपत शुभमध्ये ।
सोऽपि सुन्दर जिनपति दृष्ट्वा विविधचिह्नवरलक्षणगेहम् ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा विस्मितमना बभूव दशशतनयनयुत प्रभूत ।
निजोत्सङ्गमध्य त धृत्वा रम्यो जयदवनिना ललुभू रा ॥ २२ ॥
अधिष्ठाय धवल गजराज विविधनृत्यत्सद्नागलिभाजम् ।
सचचाल सुरसंघसमूहो गगने सर्वचिनार्तित व्यूहः ॥ २३ ॥
शनै, शनै समवाप सुतुङ्ग मरुनामधरणीधरशृङ्गम् ।
पाण्डुकवन तत्र विनिवेश्य सुरसेना सकला विनिवेश्य ॥ २४ ॥
पाण्डुक शिलासिंहपीठे त जिनबाल गुणमालसनाथम् ।
देवश्रेणियुग प्रविधाय जिनसवन विधि समाय ॥ २५ ॥

पद्ममनागरस्थसुममसलिल दूरीकृतजनताखिलकलिलम् ।
कनकघटैरानाय्य प्रमक्त्या देवेन्द्रमहयोगसुमक्त्या ॥ २६ ॥
अभिषिषेच सुरराट् जिनबालं दूरीकृतसुरतिमिजालम् ।
सुरकरनलकरशोभ्य पतितव्योमनिम्नजुलकलकलमहितम् ॥२७॥
सुरीसमूहमध्ये नृत्य किन्नरपतिकृतगीतसुकृत्यम् ।
शची चकारामरणनियोग जिनपतिदेह सुमगामोगम् ॥ २८ ॥
पुनरागत्य सुरा समेतुर्विविधमहोत्सवमर विरेजु ।
चम्पापुरे ताण्डव कृत्वा पुन पुन सुरपत्त नत्वा ॥ २९ ॥
विदध अ ममहोत्सवमपार निखिलासुरनरमोदनकारम् ।
वासुपूज्य इति नाम निधाय गुणावलि चेतसि सधाय ॥ ३० ॥
देवा जग्मुरा.ममवाम कुर्वन्तोऽड ब्रो य मृदुहासम् ।
नराधिपो वसुपूज्यसुनामा महीतलेप्रसुनाखिलधामा ॥ ३१ ॥
मचकार वरमङ्गलमार पौरजनामोदनसचारम् ।
दृष्ट्वा महोत्सव त मा· लोका प्रापु पुण्याचारम् ॥ ३२ ॥
अथ परोक्ष ध्यान कृत्वा ट्.ख़मदद्रुरित किल हत्वा ।
नीर धार्चा जिननोमि पुन पुन स्तवन जिननोमि ॥ ३३ ॥
वासुपूज्य जिनराज नमामि तमोनाश दिनराज नमामि ।
कर्मद्विप मृगराज नमामि मोदसि धु द्विजराज नमामि ॥३४॥

मयूरगतिच्छन्द (सवैया तेइसा) ।

हे वसुपूज्य नरे द्रतनूज ! तमस्तविघात दिवाकर देव,
मुक्तिरमामुख नील पयोज निशाकर सौरय सुधा भरशालिन् ।

ध्यान कृपाण निकृत कुकर्म कलाप निरन्त पराक्रम भासिन्,
मदमदो मवमागर तार वर स्वररञ्जनमत्र हि रेहि ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीं ज ममकल्याणप्राप्ताय श्री वासुपूज्यजिन द्राय म.र्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

वासुपूज्य जिन तपःकल्याणक पूजा ।

कामश्रीमुख चारुपत्र निचय प्रदीप्त दावानल,
बुद्धि श्री तरुकीर्तिकान्तिविलसन्मन्द्रसरसालयम् ।
लोकानन्दपु सागरोन्द्धितिकर राका निशारत्नम्,
वन्देऽह वसुपूज्य राजतनय मोक्षार्थलोद्वारकम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री तप कल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्रावतर अवतर सम्वौषट ।

ॐ ह्रीं श्री तप कल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ।

ॐ ह्रीं श्री तप कल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट ।

भुजङ्गप्रयातच्छन्द ।

हतो येन मोहो गतो लोकबाधा,
सुविद्याख्यया धृता येन चित्ते ।
जलैर्मर्मपात्रस्थितैः स्वच्छरूपै,
मुदाह जिन त यजे वासुपूज्यम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं त्र कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

विरागेण येन क्षत कामभूपो,

हता मोघ तन्द्रा प्रबुद्धात्मकेन।

द्विरेफ प्रियेण महाचन्दनेन,

मुदाहं जिनं यजे वासुपूज्यम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं त्र कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

गुणौघेन युक्त सदा दोषमुक्त,

हसन्त महन्त जिनं मारमेन्द्रं।

सितेनाक्षतेन प्रभाभासुरेण,

मुदाहं जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं त्र कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

अकाम विराम विगाम विमाम,

महान्त मयान्त सदा शर्मरम्यम्।

लता तरनेन द्विरेफप्रियेण,

मुदाहं जिनं तं यजे वासुपूज्यम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं त्र कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाण-विनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरश्योपदेशोऽर्पितो जीवराज,

... दुःखानि राक्षानि।

निपेद्य निवेद्यन पेद्यान्नमात्,
मुदाद जिन त यजे वासुपूज्यम् । ६ ॥

ॐ ह्रीं सप कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुध रोग-विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रपुद्दा त्रिलोकी यदीयोपदेशे,
यदीयेन बोधन दिष्ट न किञ्चित् ।
प्रदीपैं प्रदीपै महारत्नहर्षे,
मुदाद जिन त यजे वासुपूज्यम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं सप कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

हत येन कर्मारिमे य प्रचण्ड,
धूप धर्म यनारमणोदरम् ।
सुधूपन पाटीरपाषा निस्य,
मुदाद जिन ॥ यजे वासुपूज्यम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं सप कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म-विनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

समीचीनबोध समीचोनदृष्टि,
समीची-वृत्त समीचीन मोरदम् ।
रवद्राद्विपुर्दमहारसदर्शी,
मुदाद जिन त यजे वासुपूज्यम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं सप कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

धृता येन कान्ता [illegible]
महा[illegible]
बलाढ्येन रम्येण [illegible]
मुदा[illegible] [illegible] ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं तप कल्याणकमण्डित [illegible]
अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

[illegible]

फाल्गुने कृष्णपक्षे च [illegible]
किञ्चिन्निमित्तमासाद्य [illegible] ॥ १२ ॥
लौकान्तिक महादेव [illegible]
देवयानमधिष्ठाय [illegible] ॥ १३ ॥
पञ्चमुष्टिभिरुत्पाट्य [illegible]
सिद्धेभ्यो नम इत्युक्त्वा [illegible] ॥ १४ ॥
दीक्षाकाले महाध्यान [illegible]
इत्थचतुर्णिकायेनामर [illegible] ॥ १५ ॥
वासुपूज्यजिने चापे [illegible]
नीरचन्दनशालेय शुभ [illegible] ॥ १६ ॥
धूपैः फलैश्च सृष्टेन [illegible]
कुर्यान्मे पापसंहार [illegible] ॥ १७ ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां [illegible]
जिने द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति [illegible]

जयमाला ।

नो नित्य जगतीतले किमपि हा ▇ विद्यते कुत्रचित्,
सर्वं कालकरालकण्ठकलितं सर्वत्र सदृश्यते ।
इत्थं भोगशरीरयोः पद्दयो य काननस्थानपत्,
त वन्दे वासुपूज्य राजतनय भक्त्या सदाहं मुदा ॥१७॥

कामिणी-छंद ।

कारण किञ्चिदासाद्य संसारतः,
सविराग दधौ मुक्तिरामोत्सुकः ।
देव लौकान्तिका आगता भक्तितो,
भावनाद्वादशी पठुरानन्दतः ॥ १८ ॥
नास्ति किञ्चित्सदा शाश्वतं भूतले,
नास्ति रक्षा परा नश्यतो देहिनः ।
नास्ति किञ्चित्सुखं भूतले भाविना,
विन्दते शोक एवासुख सन्ततम् ॥ १९ ॥
चेतनो भिन्न एवास्ति ना देहतो,
विद्यते देह एवोऽशुचिर्भङ्गुर ।
मोहनिद्रावशाः कुर्वते आस्रवं,
गुम्फितो जायते कर्मणा संवरः ॥ २० ॥
निर्जरा जायते सत्तपो धारणात्,
अत्र लोके सदा भ्रम्यते चेतनैः ।

दुर्लभो वर्तते बोधि लाभो महान्,
धर्म एवाहितो नो वचुगव द्युः ॥ २१ ॥
देव लौकान्तिका स्वर्गलोक गता,
भावना द्वादशी मीरयित्वा सुमम् ।
भावनव्यन्तर ज्योतिष स्वर्गजा,
देवलोकास्तदा आगता मोदत ॥ २२ ॥
रत्नजातोचित याप्ययान तत,
दवता निर्मम विक्रियाशक्तितः ।
श्री जिनस्तत्र मथातवान्कानन,
तत्र केशान्निजा पाटयित्वा क्षणम् ॥ २३ ॥
फाल्गुने मासके श्यामले पक्षक,
दर्शकोपान्तिकायां तिथौ मोदत ।
ओंनम सिद्धमुच्चार्य दीक्षाश्रिता,
तत्क्षण ज्ञानमामादित तुर्यकम् ॥ २४ ॥
मूर्धिवतान्मूर्धजा निन्द्र आदत्तवान्,
धारयित्वा शुमान् रत्न सद्भाजने ।
मोदत क्षिप्तवान् क्षीरपाथोनिधौ,
देवदेवीयुतो नाकमायातवान् ॥ २५ ॥
भूरिशो भूभुजो दीक्षिता सत्वर,
तेन सार्धं सदा मोक्षलक्ष्म्युत्सुकाः ।

तैर्युतः श्रीजिनो वासुपूज्यो बभौ,
कल्पवृक्षैर्युतो मन्दरशैलो यथा ॥ २६ ॥

ध्यानयोगादयो सुन्दराङ्गमापतेः,
सद्गृहं भोजनार्थं समादधान् ।
देव ! दैवतो रत्नवृष्टिः कृता,
तद्गृहे व्योमतः सपदाताङ्गणे ॥ २७ ॥
सत्तपोमङ्गलं लोकयित्वा सदा,
श्रीपतेः श्रीजिनो धन्यभाग्योऽभवत् ।
पूजया साम्प्रतं भाग्यवन्तो वयं,
आगतवन्तः स्तय श्रीजिनक्ष्मापते ॥ २८ ॥

प्रमदाच्छन्दः (हिन्दी गीतिका) ।

अघ मुक्ति सुप्रमदाननाब्ज यदङ्घ्रिमाहितभ्रमर,
शुभकीर्तिसारसितीकृताखिललोकसुन्दरमन्दिरम् ।
दिविजादि मर्त्य खगेन्द्र भूचरधिप कञ्जदिवाकर,
वसुपूज्य राजतनूभवं प्रणमाम्यहं वरदाकरम् ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं तप कल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।



श्रीवासुपूज्य जिन ज्ञानकल्याणक पूजा।

हे कारुण्यमहोदधे गुणनिधे सत्प्रीतिपाथोनिधे,
सद्बोधा द्विमारविग्लोलितजगत्काष्ठावध पद्मनिधे ।
पादाब्जानत देवमाल विलसत्सत्कीर्तिमाल प्रभो,
श्रीमन् हे वसुपूज्यजात जिनप प्रोद्धारयास्मानित ॥१॥
संसाराउपयोनिधेस्तितरां दुःखाम्मसा सम्भृताद्,
नानायोनिमनुष्यभीतनिचये पादोमित त प्लुताद् ।
मग्नोन्मग्नतया चिरेण नितरां संपीडिता भो विभो,
सीदाम्योऽत्र ततो विनम्र शिरसा कुर्मः पुनः प्रार्थनाम् ॥२॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिन द्र ! अत्रावतरावतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

स्वर्गङ्गादिसन्नीरैः काञ्चनामत्रसंस्थितैः ।
वासुपूज्य जिनं यायं ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाटीरैः कुङ्कुमोद्घृष्टैर्गन्धा पीकृत षट्पदैः ।
वासुपूज्य । ... ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ४

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

शाल्येयैस्तण्डुलैः रम्यैरखण्डैः शशिसुन्दरैः ।
वासुपूज्य जिनं चार्चे ज्ञानकल्याणकाश्रितम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

चाम्पेय कुन्दजात्याद्यैः लतान्तैर्मिलितालिभिः ।
वासुपूज्य जिनं चार्चे ज्ञानकल्याणकाश्रितम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

आज्यसारेण चरुणा विविधेन सुगन्धिना ।
वासुपूज्य जिनं चार्चे ज्ञानकल्याणकाश्रितम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

घृतोद्भवेन दीपेन प्रकाशित दिशा सदा ।
वासुपूज्य जिनं चार्चे ज्ञानकल्याणकाश्रितम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

धूपेन दिव्यरूपेण गन्धमत्तापितालिना ।
वासुपूज्यजिनं चार्चे ज्ञानकल्याणकाश्रितम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।

माकन्दनारिकेलाद्यैः सत्फलैः रसनाप्रियैः ।
वासुपूज्यजिनं यायं ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

नीरपाटीर शालेय सुमाद्यैर्मिलितैर्मुदा ।
वासुपूज्यजिनं यायं ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

माघे मासे सिते पक्षे द्वितीयायां तिथौ तथा ।
निहत्य घाति कर्माणि प्राप्त येन चतुष्टयम् ॥ १२ ॥
ज्ञानदृग्वीर्यसौख्यानामनन्तानां महस्विनाम् ।
दृशं द्राग्झा समास्थ्य धनदेन विनिर्मितं ॥ १३ ॥
द्वादशगमासयुक्तो नृसुरासुरसेविते ।
स्थित्वा समवसरणे दत्त येनोपदेशनम् ॥ १४ ॥
प्रातिहार्याष्टकोपेत ज्ञानकल्याणकाञ्चितम् ।
वासुपूज्य जिनं यायं पूर्णार्घेण महोत्सवं ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वितीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

यस्य ज्ञानदिवाकरेण दलितं ध्वान्तं तत सर्वतो,
नो लेभे वसुधातले क्वचिदपि स्थानं प्रमत्तत्वतम्

लोकालोकपदार्थबोधनकर सद्देशनावत्सरं,
त च दे वासुपूज्यराजतनयं भक्त्या सदाहं मुदा ॥१६॥

अनुष्टुप् ।

माघमासे सिते पक्षे द्वितीया सन्निधौ तथा ।
विशाखक्षे तपोऽरण्ये नीपानोकह सत्तले ॥ १७ ॥
ध्यानमग्नो जिनो भूत्वा तस्थौ निश्चलविग्रहः ।
नासाग्रा दृष्टिमाधाय क्रोडस्थापितपाणिकः ॥ १८ ॥
अर्धोन्मीलन्मचक्षुः शनैरारब्धप्राणनः ।
आत्मानमात्मनाध्यायन् सुस्थिरीकृतमानसः ॥ १९ ॥
अभासीद् वासुपूज्योऽसौ सुशान्तनिभस्तदा ।
क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानप्रभावतः ॥ २० ॥
मोहकर्मक्षयं कृत्वा क्षीणमोहोऽभवत्क्षणम् ।
हत्वा घातित्रयं पश्चाद्वासुज्ञानपञ्चवः ॥ २१ ॥
लोकालोकपदार्थज्ञो रश्मिमालीव भासितः ।
सयोगकेवलिप्रख्य स्त्रयोदशगुणस्थित ॥ २२ ॥
चतुर्णिकायदेवेषु क्षोभोऽभूद्यानक्षतेः ।
सौधर्मेन्द्र समाहूय धनदं निर्दिदेशतत्र ॥ २३ ॥
वासुपूज्यजिनोऽद्याभूत्केवलज्ञानलोचनः ।
रचयाशु सभां तस्य सु दशाकारशोभिनीम् ॥ २४ ॥
यक्षेश्वरः क्षितिं प्राप्य निर्ममे गगने सभाम् ।
विक्रियाशक्तितो दिव्या विविधाकारभासिनीम् ॥ २५ ॥

क्वचित्ताल क्वचित्साल क्वचिदाम्राद्यनोकहा ।
क्वचित्पताका रम्याभा क्वचिन्नर्तनशालिका ॥ २६ ॥
मानस्तम्भा विभान्त्येते क्वचिदाशाचतुर्ष्वन ।
रत्नराजिविनिर्माणा पीठत्रयविराजिन ॥ २७ ॥
मध्ये गन्धकुटीपद्मे जिनः श्रीवासुपूज्यक ।
विद्यमानोऽभवद्दिव्यस्सभा द्वादश भासिता ॥ २८ ॥
जयप्रयाणानि कुर्वन् निलिम्पानां समुच्चय ।
व्योमयाना यधिष्ठाय व्योममार्गात्समागत ॥ २९ ॥
रत्नच्छत्रविभ्राजी पादपोऽशोकसंज्ञित ।
अभ्यर्णे जिननाथस्य शुशुभे वातयपित्र ॥ ३० ॥
सिंहासन महोत्तुङ्ग नानारत्नमनोहरम् ।
जिनाधिष्ठितमाभासीत्स्वर्णाचलगिरिर्यथा ॥ ३१ ॥
छत्रत्रय बभ्राज रत्नाभिनिर्मितादरम् ।
शीर्षे भगवतोऽभासीच्चन्द्रत्रितय सन्निभम् ॥ ३२ ॥
भामण्डल प्रभाभार धामभूत तिमोहरम् ।
जिननाथ समीपेऽभाद् मण्डप तु विहरणम् ॥ ३३ ॥
सार्द्धद्विस्यो जिनस्यास्य दुन्दुभिध्वानमञ्जिम ।
निःस्वान ध्वनी रम्यो लोकत्रयहितप्रद ॥ ३४ ॥
मिलिन्द मिलिता दिव्य मन्दाराद्रि महीरुहाम् ।
वृष्टिर्बभूव पुष्पाणा निलिम्पव्रातपातिता ॥ ३५ ॥
यक्षैराधूयमानानि चामराणि बभासिरे ।
जिनराज यथासीत प्रसूनानि समन्तत ॥ ३६ ॥

देवदुन्दुभिसंनादो रोदसी व्याप सुन्दरः ।
'एहीहि भव्य' इत्येव कुर्वाणः प्रेरणां नृणाम् ॥ ३७ ॥
प्रातिहार्याष्टकोपेतोऽनन्तचतुष्टयादिभासितः ।
वासुपूज्यजिनश्चन्द्रे मतत्तराश्रमासनम् ॥ ३८ ॥
दिव्योपदेशेन भव्यजीवकल्याणकारकम् ।
श्रुत्वा सुरासुराः सर्वे तिर्यञ्चो मनुजास्तथा ॥ ३९ ॥
धर्मरूपं प्रविश्याय लेभिरे परमां मुदम् ।
भव्यप्रार्थनां श्रुत्वा विजहार जिनो भुवि ॥ ४० ॥
नभोमार्गेण पाथोजे देवैश्च विनिर्मितैः ।
सुगन्धिभिर्महारम्ये भक्तिरूपेण सत्पथैः ॥ ४१ ॥
ज्ञानकल्याणकं कृत्वा देवाः स्वर्गं प्रपेदिरे ।
मानवाः परमामोदं लेभिरे तस्य दर्शनात् ॥ ४२ ॥
दिव्यास्थानस्थितं देवं स्मारं स्मारं स्तुवन्ति ये ।
ते लभन्ते महापुण्यं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ॥ ४३ ॥

मालिनीछन्दः ।

जयति जनसुबन्धश्चित्रचमत्कारनव्यः,
　　शमसुखपरकन्दोऽशास्त्रकर्मारिशुद्ध ।
निखिलमुनिगणिष्टः कीर्तिमत्तावरिष्टः
　　सकलसुरपपूज्यः श्रीजिनो वासुपूज्यः ॥ ४४ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

निर्वाणकल्याणकमण्डित श्रीवासुपूज्य जिन पूजा ।

शुक्ल ध्यानकृपाणखण्डितरिपुः स्वाधीनतां प्राप्नुवन्
स्वच्छाकाशनिकाशचेतनगुणं चामाद्य य [illegible] ।
लेमेऽनन्तमनश्वरं सुखवरं स्वात्मोद्भवं स्वात्मनि
त [illegible] द वसुपूज्यराजतनय भक्त्या मुदा सन्नमे [illegible]

यम तालकवाच्छन्द ।

हे वासुपूज्य जिनराज महामुनी हे
मज्जन्तमत्र भववारिनिधौ दयालो ।
हस्तावलम्बनमत कुरु मा विदूर
मुक्त्वाद्य वमिह क शरण [illegible]

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डित श्री [illegible]
तरावतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डित श्री [illegible]
तिष्ठ ठ ठ ।

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डित श्री [illegible]
सन्निहितो भव भव वषट् ।

पञ्चचामरच्छन्द (ध्[illegible])

मुनी द्रचित्तशीतलेन सुन्दरेण [illegible]
सुवर्णकुम्भसम्भृतेन [illegible] ।

यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रसङ्घनन्दित
जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुशीतलेन चन्दनेन भृङ्गसङ्गधारिणा
निदाघतापहारिणा मनःप्रमादकारिणा ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रसङ्घनन्दित
जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा ।

शशिप्रभेण तण्डुलेन दिव्यगन्धधारिणा
अखण्डितेन मञ्जुलेन चित्ततोषकारिणा ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रसङ्घनन्दित
जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा ।

मनोज्ञमालतीपयोजपारिजातपुञ्जकै
स्वगन्धमारमोदितद्विरेफराजवृन्दकैः ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रसङ्घनन्दित
जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुवर्णभाजनस्थितैरमन्दबोधकारके-
    र्निवेद्यकै र्घृताप्लुतै सितामृदुप्रकारकैः ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रमद्गनन्दित
    जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधा
रोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रभा प्रपन्नमासितैर्दिनेशदीप्तिधारिभिः ।
    सुदीपकजैन क्षण ममस्तमो.हारिभि ॥
यतीन्द्र वृन्दवन्दित सुरेन्द्रमद्गनन्दित
    जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्ध
कारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
    सुचन्द्रचूर्णपूरितै सुगन्धिभिः मनन्दितैः
        सुधूपवर्णवीकृतालिमालिशास्त्रितैः ।
    यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रमद्गनन्दित
        जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्ट
कर्मविनाशनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा ।
    सुमातुलिङ्गनारिकेल मोचकादि सत्फलैः
        स्वगन्धतोषिताखिलैर्मनोहरैः सुनिर्मलैः ।
    यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रमद्गनन्दित
        जिन यजामि द्वादश जयावतीसुत हितम् ॥१०॥

ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

सुनीरच दनाक्षतः प्रसूनदीपधूपनै—
नैवेद्यमत्फलैर्मदामन प्रमोदरूपणे ।
यतीन्द्रवृन्दवन्दित सुरेन्द्रसङ्घवन्दित
जिन यजामि द्वादश जगत्पतीसुत हितम् ॥११॥

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ पदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा ।

भाद्रमास सितपक्षे पक्षन्द्रियवाङ्निवृते ।
चतुर्दश्यां तिथौ येन मन्दाराद्रौ मनोहरे ॥ १२ ॥
हत्वा कर्म हता प्राप्ता मोक्षलक्ष्मीरनश्वरी ।
चतुर्निकायमेघैश्च पूजा निर्वाणकालजा ॥ १३ ॥
कृता भक्त्या समागत्य साष्टोधा सुखप्रदा ।
वासुपूज्य जिन ध्यायन् तमहं भक्तिसंयुतः ॥ १४ ॥
नीरं पाटीरं शालेय रतान्नार्धैर्मनोहरैः ।
रोहिण्याद्यपवासस्यास्मि उद्यापनमहं मुदा ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्ष निर्वाणकल्याणकाय वासुपूज्यजिनाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

य सज्ज्ञानविभूषित सुरचयाः अर्चन्ति य सन्ततं ।
ध्वस्तो येन मनोभवो बुधजनो यस्मै सदा तिष्ठते ॥
यस्मान्मोहपरम्परा विगलिता यस्यास्ति दासो जगत् ।
यस्मिल्लीनतमो विकल्पनिचयस्तं वासुपूज्यं भजे ॥१६॥

रोलाछन्द (२४ मात्रा)

मृदावानलपद दमितभवनीर नमस्ते ।
कर्मारिण्य कुठार कामकरिसिंह नमस्ते ॥
मोहतमोदिननाथ जगज्जननाथ नमस्ते ।
वासुपूज्यजिनदेव देवकृतमह नमस्ते ॥१७॥
मातापात्रदिते दत्तासितमहामहोत्सव ।
प्राप्तानन्तचतुष्टयादिगुणपुञ्ज महाघन ॥
मुक्तिरमामुखकमलरञ्जितमनीत मोक्षघन ।
वासुपूज्यजिनराज जयति दुरितौघ निकन्दन ॥१८॥
एकमास इह स्थित्वा आयुषो यदा बभूव ।
कृत्वा योगनिरोधमत्र गतगतिर्विभुर ॥
मन्दारादिगिरौ ध्यानस्थिरमना बभूव ।
शुक्लध्यानप्रताप दग्धकर्मा स बभूव ॥१९॥
क्षण मुक्तिवर रमणीरमणो जातो देव ।
क्षण महानलतापरञ्जितो जातो देव ॥
क्षण शुद्धचिद्रूपधारको जातो देव ।
क्षण चिदाकाश मनिमो जातो देव ॥२०॥
वासुपूज्यजिनवरो बन्धनादय निर्मुक्त ।
शुद्धायातो देवचयो निजसद्गुणयुक्त ॥
नखकेशानादाय कृत्रिम वपुश्चकार ।
अनलामरमुकुटाद्वह्निमग्नोऽनलचकार ॥ २१ ॥
वासुपूज्य जिनदेह दाहममरेशः कृत्वा ।
भूतिर्गणैर्निजगात्रमत्र परिलिप्त कृत्वा ॥

तस्य गुणावलि चिन्तनेकपटु चित्त कृत्वा ।
स्त्वनमाम मह द्वमग्रहैर्लांस्य कृत्वा ॥ २२ ॥
चम्पापुर निकटस्थमचलमुत्कृष्टाकारं ।
पूजयन्ति सुरमर्त्येषया सुपमहिताकारम् ॥
म दाताद्रव्यास्त्यालमनोज्ञ पुष्पाघारं ।
पूजयामि वयमत्र शार्जिसंसारघारम् ॥ २३ ॥
हृ वासुपूज्य जिनराज बन्धनान्मुक्त कुरु माम् ।
ममवासोऽत्यनिधानमत्रगुणन्मित कुरु माम ॥
सुखेन दु खावलीमत्र भवसिन्धो पतित ।
कर्ममहारिपुसं घात्मनिचयेन विदलित ॥ २४ ॥
दयासिन्धुरभिहितो भवाम्भमग्नजनार्थै-
र्लोकत्रयकल्याणकाम्को ध्रुवसुरमार्थै ॥
पन्नालाल तिग्ममवान्नस्म च पतित ।
निष्कामय जिननाथ कर्मरिपुचक्र विदलितम् । २५ ॥
मन्दाक्रान्ता छन्द ।
कामज्वाला प्रशमनपटु जेन्द्रात् प्रशस्तारी ।
राज्य प्राज्य तृणमिव तथा या मुमोचात्मतत्त्व ॥
स्मार स्मार मुनिरपि मरन् मुक्तिमभामिनीं च ।
मद्वृत्तात्त्यामरणनिचय दत्तचित्तो बभूव ॥ २६ ॥
सोऽयं देवो भुवनजनमनस्तोषकारी समन्तात्
सतापऽस्मिन्पतितममरस्त्वामि चन्द्राङ्घ्रि युग्मः ॥
पन्नालाल दुरितनिचय मुक्तिकान्तात्सुक मां
कृपांचीर्णे भवजलधितो द्रु खमुक्त्युत्तमात् ॥ २७ ॥
ॐ ह्रीं निर्वाणकल्याणकमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिन द्राय महार्घं नि० ।

अडिल्लछन्द ।

अविनाशी गुणवृन्द विभासी शिवपति–
मोहनिमित्तवितरणिमरपतिमयुतः ।
मन्दारानलदाहदमनाजनीकरो
वासुपूज्यजिनवरो जयति गुणमयुतः ॥

(इसके बाद नाचे लिखा हुआ शांति मन्त्र बोलते हुए प्रतिमाजीके आगे थालीमें जलधारा छोड़ना चाहिए और अग्निमें धूप भी खेते रहना चाहिए ।)

शान्तिमन्त्रः ।

ॐ नमः सिद्धेभ्य । श्री वीतरागाय नम । ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्री पार्श्वतीर्थंकराय, द्वादशगणपरिवेष्टिताय, शुक्लध्यानपवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयम्भुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने परमसुखाय, त्रैलोक्य महीव्याप्ताय अनन्त संसारचक्र-परिमर्दनाय, अनन्तदर्शनाय, अनन्तवीर्याय, अनन्तसुखाय, त्रैलोक्यवशंकराय, सत्यज्ञानाय सत्यब्रह्मणे धरणेन्द्र फणामण्डल मण्डिताय, ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविका प्रमुख चतु संघोपसर्ग विनाशाय, घातिकर्मविनाशाय, अघातिकर्मविनाशाय। अपवाद-अस्माक छिन्द२ भिन्द२ । मृत्यु छिन्द२ भिन्द२ । अतिकाम छिन्द२ भिन्द२ । रतिकाम छिन्द२ भिन्द२ । क्रोध छिन्द२ भिन्द२ । अग्नि छिन्द२ भिन्द२ । सर्वशत्रु छिन्द२ भिन्द२ । सर्वोपसर्ग छिन्द२ भिन्द२ । सर्वविघ्न छिन्द२ भिन्द२ । सर्वभय छिन्द२ भिन्द२ । सर्वराजभय छिन्द२ भिन्द२ । सर्वचोरभय छिन्द२ भिन्द२ । सर्वदुष्टभय छिन्द२ भिन्द२ । सर्वमृगभय छिन्द२ भिन्द२ । सर्वपाप त्र छिन्द२ भिन्द२ । सर्वमामपमय

छिंद२ भिंद२ । सर्वशूलभय छिन्द२ भिन्द२ । सर्वक्षयरोग छिंद२ भिन्द२ । सर्वकुष्ठरोग छिन्द२ भिन्द२ । सर्वज्वर रोग छिन्द२ भिन्द२ । सर्वगजमारी छिंद२ भिन्द२ । सर्वाश्वमारी छिंद२ भिन्द२ । सर्वगोमारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वमहिषमारी छिन्द२ भिंद२ । सर्वधान्यमारी छिंद२ भिन्द२ । सर्ववृक्षमारी छिन्द२ भिन्द२ सर्वगुल्ममारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वपत्रमारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वपुष्पमारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वफलमारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वराष्ट्रमारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वदेशमारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वविषमारी छिन्द२ भिन्द२ । सर्वक्रूररोग छिन्द२ भिन्द२ । सर्वबेतालशाकिनीभय छिन्द२ भिन्द२ । सर्ववेदनीय छिन्द२ भिन्द२ । सर्वमोहनीय छिन्द२ भिन्द२ । ॐ सुदर्शन महाराज चक्रविक्रमतेजोबल शौर्यशान्ति कुरु कुरु । सर्वजनानन्दन कुरु कुरु । सर्वभव्यानदन कुरु कुरु । सर्वगोकुलानदन कुरु कुरु । सर्वग्रामनगरखेट खर्वट मडम्ब पत्तन द्रोणामुख संवाहनंदन कुरु कुरु । सर्वलोकानंदन कुरु कुरु । सर्वदेशानंदन कुरु कुरु । सर्वयजमानानंदन कुरु कुरु । हन हन दह दह पच पच कुट कुट शीघ्र व्याधि व्यसनवर्जित अभय क्षेमारोग्य स्वास्त्यस्तु, शांतिरस्तु शिव मस्तु, कुलगोत्रधन धा य सदास्तु, चन्द्रप्रभ, वासुपूज्य, मल्लि वर्धमान, पुष्पदंत, शीतल, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, पार्श्वनाथ, परम देवाः सदा शांति कुर्वन्तु कुर्वन्तु इति स्वाहा । " स्तुत "

(इस समय यजमानको चाहिये कि वह अपने व्रतोद्यापनके हर्षमें शक्ति अनुसार चार प्रकारका दान करे । इसके बाद पुष्पांजलि क्षेपण करते हुए शांति वगैरह बोले ।)

शान्तिपाठः।

दोधकवृत्तम्।

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनं समम्बुजनेत्रम्॥ १ ॥
पञ्चममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि॥ २ ॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मं यस्य विभाति च मण्डलतेजः॥ ३ ॥
तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च॥ ४ ॥

वसन्ततिलकावृत्तम्।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः॥
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपा
स्तीर्थंकराः सततशान्तिकरा भवन्तु॥ ५ ॥

इन्द्रवज्रावृत्तम्।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥६

स्रग्धरावृत्तम्।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्॥
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि॥ ७ ॥

अनुष्टुप्—प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः॥ ८ ॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

मन्दाक्रान्ताच्छन्दः ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्याछन्दः ।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ १० ॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥ ११ ॥

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाहोय ।
मम होउ जगदबंधव जिणवर तव चरणसरणेण ॥ १२ ॥

(इसके बाद कहे स्तुति बोलना एवं अष्ट को तीन बार शान्ति दें)

विसर्जनपाठः ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम् ।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥ ४ ॥

(इसके बाद ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप करे फिर मन्दिरमें